अंतस

अर्द्धवार्षिक पत्रिका, अंक-16, 15 अगस्त, 2019

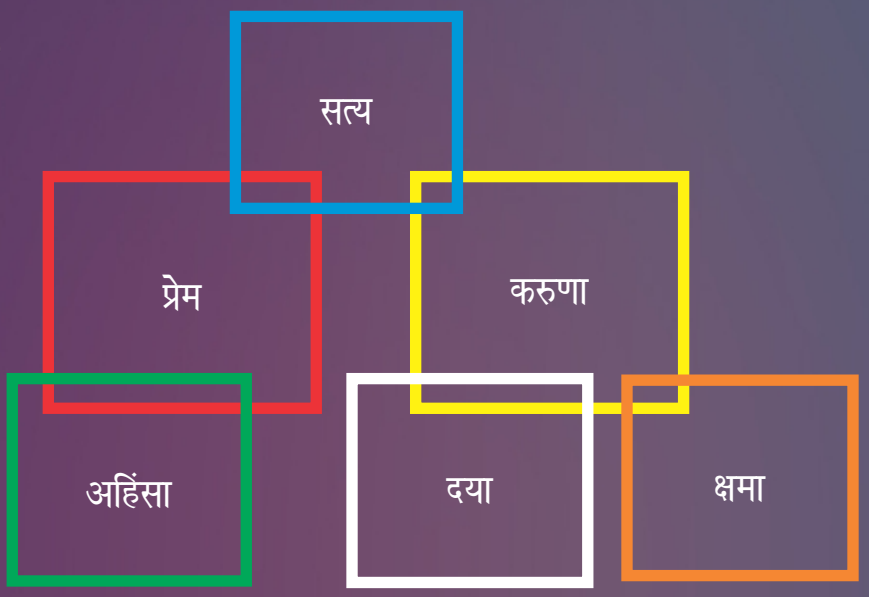

मूल्य-शिक्षा

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर

नियम- निर्देश

- अंतस के आगामी अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक एवं यथासंभव अप्रकाशित रचनाएं भेजने का कष्ट करें।
- रचनाएं यथासंभव टाइप की हुई हों, रचनाकार का पूरा नाम, पद एवं संपर्क विवरण का उल्लेख अपेक्षित है।
- लेखों में शामिल छाया-चित्र तथा आँकड़ों से संबंधित आरेख स्पष्ट होने चाहिए।
- अनुदित लेखों की प्रामाणिकता अवश्य सुनिश्चित करें। अनुवाद में सहायता हेतु संस्थान राजभाषा प्रकोष्ठ से संपर्क कर सकते हैं।
- प्रकाशन के लिए किसी भी लेखक को किसी प्रकार का मानदेय नहीं दिया जाएगा।
- अंतस में उन सभी प्रकार के विचारों का स्वागत होगा जो संस्थान परिसर में रहने वाले अथवा काम करने वाले लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं किन्तु किसी भी प्रकार के राजनीतिक विचारों को प्रोत्साहित नहीं किया जाएगा।
- अंतस में प्रकाशित रचनाओं में निहित विचारों के लिए संपादक मंडल अथवा राजभाषा प्रकोष्ठ उत्तरदायी नहीं होगा और इसके लिए पूरी की पूरी जिम्मेदारी स्वयं लेखक की ही होगी।
- रचनाएँ अंतस के अनवरत दो अंकों में प्रकाशित न होने की स्थिति में संबंधित रचनाकार राजभाषा प्रकोष्ठ में श्रीमती सुनीता सिंह से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।
- प्रयुक्त भाषा सरल, स्पष्ट एवं सुवाच्य हिंदी भाषा हो।

स-आभार
संपादक मंडल

अंतस परिवार

संरक्षक
प्रोफेसर अभय करंदीकर

निर्देशन
प्रोफेसर मणीन्द्र अग्रवाल
उपनिदेशक

मुख्य संपादक
डॉ. कांतेश बालानी

संपादक
डॉ. वेदप्रकाश सिंह

संपादन सहयोग
प्रोफेसर अरुण कुमार शर्मा
प्रोफेसर शिखा दीक्षित
डॉ. अर्क वर्मा
श्री विष्णु प्रसाद गुप्ता

अभिकल्प (Design)
सुनीता सिंह

अनुवाद
श्री जगदीश प्रसाद
श्री भारत देशमुख

छायाचित्र
श्री गिरीश पंत

विशेष-सहयोग
प्रस्तुत अंक के सभी रचनाकार
समस्त संस्थान कर्मी
एवं
विद्यार्थी साहित्य सभा

संकेतक

शुभेच्छा
निदेशक 3
उपनिदेशक की दृष्टि में 4
सम्पादकीय 5
कुलसचिव का संदेश 6

रिपोर्ट - दीक्षान्त समारोह-2019 7

गुरुदक्षिणा
स्व. डॉ. रंजीत सिंह 8

साक्षात्कार
प्रोफेसर अश्विनी कुमार 12

साहित्य यात्रा
गीत 15
मूल्य शिक्षा 16
दिवास्वप्नो का बसेरा 17
भारतीय संदर्भ में कैंसर रोग-निदान और समाधान की चुनौतियाँ 20
ब्रह्मास्त्र 31
आत्मबल 32
होड़ (कविता) 33
गरीबी (कविता) 34
ख्वाब (कविता) 34
भारतीय शिक्षा और नैतिक मूल्य 39
आओ बच्चों तुम्हें दिखाए, झांकी हिंदुस्तान की (कविता) 42
नन्ही कली (कविता) 45
मूल्यबोध 46

विरासत
लज्जा और ग्लानि (विचारात्मक निबन्ध) 26

बलिदानी
मदन लाल धींगरा अप्रतिम साहस की मिसाल 36

भाषा विमर्श
मुक्तक 43
कन्नड़ भाषा 44

बालबत्तीसी
अन्धा गिद्ध 47
बीज (कविता) 48

कार्यालयीन टिप्पणियाँ 49

शुभेच्छा

निदेशक की कलम से...

प्रिय बंधुओं,

स्वतंत्रता दिवस की बधाई !

पाठकों, "अंतस" का यह अंक "मूल्य-शिक्षा" को समर्पित है। शिक्षा का उद्देश्य छात्रों के दैनिक जीवन में सादगी के साथ आदर्श का पालन करना है, जिससे वे सदाचारी एवं बलवान बनें और अपनी शिक्षा का उपयोग सामाजिक विकास तथा राष्ट्रनिर्माण में करें। आज छात्र, जीवन का वास्तविक मूल्यांकन न कर, पदवी एवं सम्पत्ति पर ही अधिक ध्यान रखते हैं। मनुष्य को निर्भय, अहंकार रहित, निःस्वार्थ बनाना ही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। वर्तमान में छात्रों की शिक्षा कुछ अधिक पुस्तकीय हो गयी है। वे व्यवहारिक उपयोगी ज्ञान की अपेक्षा डिग्री एवं ग्रेड्स प्राप्ति के पीछे ही परेशान रहते हैं। छात्र अपने कॉलेज-जीवन में भी लक्ष्यरहित हैं। उसका कोई निश्चित लक्ष्य नहीं रहता। आत्मविकास तथा निज देश-जाति को वैभवशाली बनाने में हाथ-बँटाना ही उसका उद्देश्य होना चाहिए।

ये ही आदर्श हैं जिनको अधिक उत्साह के साथ व्यावहारिक रूप में छात्र-छात्राओं के सम्मुख रखने की आवश्यकता है। मेरे विचार में यही शिक्षा-मूल्य रखकर देश में परिवर्तन लाया जा सकता है एवं एक नए भारत की परिकल्पना की जा सकती है।

धन्यवाद!

अभय करंदीकर

अभय करंदीकर
निदेशक

.....

शुभेच्छा

उपनिदेशक की दृष्टि में

प्रिय पाठकों!

आप सभी को स्वतंत्रता दिवस की बहुत-बहुत बधाई!
संस्थान की साहित्यक पत्रिका 'अंतस' का यह अंक "मूल्य शिक्षा " विषय को लेकर प्रकाशित किया गया है। "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात् विद्या वह है जिसे अर्जित करके व्यक्ति ईर्ष्या, मोह, क्रोध, पाप, दीनता, नैराश्य, दासता, गरीबी, बेकारी, अभाव, अज्ञानता, दुर्गुण, कुसंस्कार आदि से मुक्ति प्राप्त करने का उद्योग करें। जो हमें इस संसार से मुक्ति दें अर्थात् जन्म मरण से मुक्त कर दे। मूल्य शिक्षा हमें मानव जीवन का उद्देश्य समझाती है, जीवन जीने का ढ़ंग समझाती है चाहे वह अर्थ अर्जित करना हो, स्वास्थ्य का ख्याल रखना हो अथवा आध्यात्मिक मार्ग हो।

हमारे देश में शिक्षा का लक्ष्य आज मात्र पेट पालन तक सीमित हो गया है। क्या आप स्वयं से यह प्रश्न नहीं पूछते कि आप क्यों पढ़-लिख रहे हैं? क्या आप जानते हैं कि आपको शिक्षा क्यों दी जा रही है और इस तरह की शिक्षा का क्या अर्थ है? वर्तमान की शिक्षा का हमारी समझ में अर्थ है स्कूल जाना, पढ़ना-लिखना और परीक्षाएं पास करना और कुछ खेल आदि खेलना। विद्यालय की शिक्षा पूरी कर लेने के बाद आप कॉलेज में जाने लगते हैं, वहाँ फिर से कुछ महीनों या कुछ वर्षों तक कठिन परिश्रम करते हैं, परीक्षाएं पास करते हैं और नौकरी पा जाते हैं, फिर जो कुछ भी आपने सीखा होता है उसे भूल जाते हैं। क्या इसे ही हम शिक्षा कह रहे हैं? हमें शिक्षा के सही मूल्य को जानना होगा। शिक्षा वह है जो हमें आदर्श जीवन जीने का ढ़ंग सिखलाए, जीवन की हर परिस्थिति का सामना करने की ताकत दे, आत्मबल दे। शिक्षा वह है जो हमें सर्वे भवन्तु सुखिनः (सभी सुखी हो) की भावना से भर दे । मुझे लगता है हम सभी को इस पर विचार करना चाहिए। इसी से हम सुन्दर समाज की रचना कर सकते हैं ।

एक बार फिर आप सभी को स्वतंत्रता दिवस की बहुत-बहुत बधाई!

धन्यवाद

मणीन्द्र अग्रवाल
उपनिदेशक

.....

हमारी संस्कृति में शिक्षा एवं स्व-धर्म अथवा कर्तव्य को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। जहाँ एक तरफ बड़ों का आदर, ज़रूरतमन्द को मदद, प्यासे को पानी और भूखे को भोजन तो वहीं दूसरी तरफ कटु वचन से दूरी, ईर्ष्या और क्लेश से खुद को बचाना, सदा सच बोलना, भले कार्य और नियमों का पालन करना ... हमारी सभ्यता हमें ये सब अनायास ही विरासत में प्रदान करती है। प्रकृति से मेल फिर वो चाहे दोस्तों के संग पेड़ पर चढ़ना हो या फिर गिल्ली-डंडे का खेल, गाय चराने से लेकर खेत जोतना या फिर मिट्टी के घर बनाना। दादा-दादी के लाड़ से नाना-नानी की कहानियों का डेरा...अंजाने ही बहुत कुछ सिखा जाता था। गुट बनाकर साथ में खेलना, अगर कोई अशक्त है तो उसकी शक्ति बनना, सही-गलत की पहचान करना, अलग-अलग होकर भी एक-जुट रहना...इन पहलुओं से सीखना...सब सहजता में हो जाता था। उच्च-विचारधारा और कम-में-संतुष्टि हमारे जीवन का आचरण बन चुकी थी। इस बीच अचानक ही औद्योगीकरण और आँख-बंद करके पाश्चात्य शैली को अपनाने की होड़ में कुछ ऐसा हुआ कि हमारी जरूरतें बढ़ गई और विलासिता जैसे हमारी ज़रूरत ही बन गई। पहले की एक-दूसरे पर निर्भरता शायद अब स्वयं पर सिमट कर रह गई। हम खुद में इतना खो गए हैं कि दूसरे की पीड़ा देखते हुए भी अंजान बने रहते हैं। हमारा हृदय कठोर और चमड़ी मोटी हो चुकी है, दर्द-दया और सहानुभूति केवल सोशल-मीडिया पर दिखाने भर के लिए रह गई है। हम ये भूलते जा रहे हैं कि हम समाज का हिस्सा हैं, और सम्पूर्ण विकास तभी संभव है जब सभी की भागीदारी होगी। पहले तो ये जानें कि इस बीच क्या छूट गया और किस तरह इस त्रुटि को संवारा जा सकता है। आज हम दूसरों के योगदान को छोटा मानने लगे हैं क्योंकि हरेक की जेब में आजकल पैसा बहुत है। तो हम हर चीज़ को पैसों से तोलने लगे हैं। हम आजकल नियम पालन से ज़्यादा नियम-तोड़ने का जिगर रखने लगे हैं...शायद पता है कि वहाँ भी पैसे से अपनी राह बना लेंगे। हर किसी का मोल-लगाकर हमें खरीदने की चाहत रहती है। हम मोल और मूल्य में फर्क ही भूल चुके हैं। हमें किसी का भी मूल्य आंकने से पहले ये जान लेना चाहिए कि अस्तित्व मात्र-ही हर-कुछ को अमूल्य बना देता है।

मूल्य-शिक्षा का आधार घर-परिवार और समाज होता है जहाँ पहली शिक्षा हमें अपने माता-पिता से मिलती है तो बाद में गुरुजन और समाज को देखकर हम अपना आचरण निर्धारित करते हैं। हम जब भी अपने से पहले दूसरों को रखेंगे, अच्छाई समाज में अपने आप फैलेगी और कल की पीढ़ी अपने-आप ही अच्छे आचरणों का अनुसरण करेगी।

अंतस के इस अंक में अचला जोसन जी का 'मूल्य शिक्षा' लेख छात्रों के जीवन-स्तम्भ को मजबूत करने के आधार बताता है और जीवन-मूल्यों को अपने आचरण में लाने का अनुरोध करता है। गिरीश पंत जी का लेख शिक्षा से नीति-बदलाव और राष्ट्र-विकास की ओर अग्रसर करता है। पंत जी मूल्य शिक्षा से जीवन के सही-अर्थ सीखने को कहते हैं और बताते हैं कि चरित्र-निर्माण की जरूरत हमारे समाज में संवेदनशीलता लाएगी और कर्तव्यनिष्ठ नागरिकों से राष्ट्र-समृद्धि के सपने को पूरा करेगी। विरासत स्तम्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का 'लज्जा और ग्लानि' निबंध बड़ी गहराई से विश्लेषण करते हुए बताते हैं कि जहां लज्जा खुद को दूसरों के मन में अच्छा बनाए रखने की इच्छा से होती है, वहीं ग्लानि अपनी बुराई को स्वीकार कर उसका पश्चाताप करने को प्रेरित करती है।

श्वेता जी का 'आत्मबल' लेख बड़ी सरलता से एक पीड़ित-चिड़िया का उदाहरण देते हुए बताती हैं कि हर स्थिति से लड़ने की क्षमता खुद में ही होती है। साथ ही साथ इस बात का संकेत भी देता है कि आपका आत्म-बल समाज-निर्माण में (दर्शक और बच्चों को) कभी अनायास प्रेरणा भी दे सकता है। डॉ उषा निगम जी का लेख 'मदन लाल धींगरा, अप्रतिम साहस की मिसाल' काफी अच्छे से एक अंतर्मुखी इंसान के सुप्त ज्वालामुखी फटने की कथा प्रस्तुत करता है। देशभक्त धींगरा जी का क्रांतिकारी स्व-बलिदान अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध भारतीय-नौजवानों को जगाने का प्रेरक और देश-स्वतंत्रता के लिए बलिदान देने की मिसाल बना। लेख, भारतीय शिक्षा और नैतिक मूल्य से अवगत कराता है। आधुनिक भारत में नैतिक मूल्यों के पतन का कारण मूल्य शिक्षा का अभाव और समाज से पृथक हो स्वयं को सबसे महत्वपूर्ण समझने की गलती है। डॉ अंजना पोद्दार जी का 'मूल्यबोध' सही-गलत की पहचान तथा जीवन-शिक्षा से मिले ज्ञान को सर्वोपरि स्थान प्रदान करता है। बाल-बत्तीसी में 'अंधा-गिद्ध' की कहानी किसी पर विश्वास करने से पूर्व परखने की शिक्षा देती है।

प्रो समीर खांडेकर जी की कविता 'होड़' कुम्भ मेले के जीवन-तत्व को समझने और जीवन-अनुभव चक्र से निकलकर सामान्य इंसान बनने की चुनौती देती है।

प्रोफेसर अश्विनी कुमार जी का साक्षात्कार चुनौतीपूर्ण इतिहास से सीखते हुए सकारात्मक और संतुलित व्यवस्था स्थापित होने के उसके सफर का अवलोकन कराता है। प्रो बुशरा अतीक जी का 'भारतीय संदर्भ में कैंसर रोग - निदान और समाधान' लेख कैंसर की उत्पत्ति एवं अतिक्रमण के कारणों से हमें परिचित कराता है। उनका दवाओं की संवेदनशीलता बढ़ाने का काम काफी सराहनीय है।

इस बार के अंतस अंक में राजभाषा प्रकोष्ठ द्वारा कन्नड़ भाषा पर विमर्श प्रस्तुत किया गया है। आशा है आपको पसंद आएगा। आपके सुझाव हमारा उत्साह बढ़ाते हैं और एहसास दिलाते हैं कि आप और हम जुड़े हुए हैं। आपसे विनम्र अनुरोध है कि अंतस के इस अंक को पढ़ें और मूल्य-शिक्षा के प्रसार में अपना सहयोग दे।

कान्तेश बालानी

डॉ कांतेश बालानी
मुख्य सम्पादक

शुभेच्छा

कुलसचिव की दृष्टि में

शिक्षा सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। वर्तमान समय में शिक्षा में कई नए प्रयोग हुए हैं, और आमूल-चूल परिवर्तन भी। फिर भी शिक्षा शब्द का अर्थ अपनी गरिमा के अनुरूप आज भी अपनी महत्ता को परिभाषित कर रहा है। 'शिक्ष' धातु से शिक्षा शब्द बना है, जिसका अर्थ है - विद्या ग्रहण करना। विद्या शब्द 'विद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है-ज्ञान पाना। अर्थात हम उसे किसी भी रूप में क्यों न पुकारे वह अपने मूल अर्थ में ग्रहण करने, प्राप्त करने अथवा शिक्षित करने के अर्थ को परिभाषित करती है।

ज्ञान-विज्ञान एवं दर्शन से मनुष्य की आत्मा में एक प्रकार का संस्कार उत्पन्न करना शिक्षा है। दूसरे शब्दों में आत्मा को संस्कृत करना ही शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है। वेदों की दृष्टि में विश्व का कोई भी असंस्कृत पदार्थ किसी भी कार्य के लिए उपयुक्त नहीं होता, अतः उसे कार्यान्तर उपयोग के लिए संस्कृत बनाना अनिवार्य है। कच्चा घड़ा असंस्कृत होकर जल धारण करने योग्य नहीं होता अतः उसे अग्नि में संस्कृत किया जाता है। ताप संस्कार से उसमें जल धारण की योग्यता आ जाती है। इसी प्रकार समुचित शिक्षा से मानव भी संस्कारवान बन चारों पर्वों में निष्णात बन जाता है। समस्त ज्ञान चाहे वह भौतिक हो, नैतिक हो अथवा आध्यात्मिक, मनुष्य की आत्मा में निहित है। बहुधा वह प्रकाशित न होकर ढका रहता है और जब आवरण धीरे-धीरे हटता है तब हम कहते हैं की हम सीख रहे हैं। जैसे-जैसे इस अनावरण की प्रक्रिया बढ़ती जाती है हमारे ज्ञान में वृद्धि होती है। अतः शिक्षा का उद्देश्य नए सिरे से कुछ निर्माण करना ही नहीं अपितु मनुष्य में पहले से ही सुप्त शक्तियों का अनावरण और उनका विकास करना भी है।

चारित्रिक शिक्षा पर बल देते हुए स्वामी विवेकानंद ने कहा था ''शिक्षा मनुष्य के भीतर निहित पूर्णता का विकास है वह शिक्षा जो जन समुदाय को जीवन संग्राम के उपयुक्त नहीं बना सकती, जो उनकी चारित्रिक शक्ति का विकास नहीं कर सकती, जो उनके मन में परहित भावना और सिंह के समान साहस पैदा नहीं कर सकती, क्या उसे भी हम शिक्षा नाम दे सकते हैं"? शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए उन्होने कहा था ''सभी शिक्षाओं का, अभ्यासों का अंतिम ध्येय मनुष्य का विकास करना है"।

संक्षेप में शिक्षा अथवा विद्या के प्रभाव को एक श्लोक में कहा जा सकता है कि -

श्रियः प्रदुग्धे विपदो रुणद्धि यशांसि सूते मलिनं प्रमार्ष्टि।
संस्कारशौचेन परं पुनीते शुद्धा हि वुद्धिः किल कामधेनुः

अर्थात, विद्या सचमुच कामधेनु है, क्योंकि वह संपत्ति को दोहती है, विपत्ति को रोकती है, यश दिलाती है, मलिनता धो देती है, और संस्कारूप पावित्र्य द्वारा अन्य को पावन करती है।

मैं संस्थान में विद्यार्जन हेतु आए हुए सभी छात्रों के नए समूहों का स्वागत करता हूँ और कामना करता हूँ कि उनका संस्थान में आने का उद्देश्य सफल हो।

शुभकामनाओं के साथ धन्यवाद ।

कृष्ण कुमार तिवारी
कुलसचिव

.....

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर अंतर्राष्ट्रीय महत्व का संस्थान है। संस्थान ने अपनी ख्याति के अनुरूप विश्व स्तर पर अपनी पहचान बनाई है। संस्थान में पढ़ाए जाने वाले उच्च स्तरीय पाठ्यक्रमों, मौलिक अनुसंधान एवं विशिष्ट शिक्षण पद्धति को देश-विदेश में मान्यता प्रदान की जाती है। संस्थान में अध्यनरत विद्यार्थी अपनी प्रतिभा के बल पर संपूर्ण विश्व में कीर्तिमान स्थापित करते हैं। संस्थान, गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वहन करते हुए अपने विद्यार्थियों को उनकी अनिवार्य शिक्षा समाप्त होने के पश्चात उपाधियां प्रदान करता है तथा उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है। शिक्षा और दीक्षा को एक ही मंच से सम्मान प्रदान करने के उद्देश्य से दिनांक 28 जून 2019 को संस्थान के मुख्य ऑडीटोरियम में 52 वें दीक्षान्त समारोह का आयोजन किया गया ।

मुख्य अथिति के रूप में उपस्थित होकर साएंट के संस्थापक एवं कार्यकारी अध्यक्ष श्री बी वी आर मोहन रेड्डी ने दीक्षान्त समारोह की गरिमा बढ़ाई। मुख्य अतिथि ने सभागार में उपस्थित छात्रों को संबोधित करते हुए कहा कि यह समय नौकरी की तरफ भागने के बजाए दूसरों को नौकरी देने का है। संस्थान के छात्रों में वह प्रतिभा एवं क्षमता है कि वह अपना योगदान देकर देश को प्रगति की ओर ले जाने मे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। अपने अध्ययन के दिनों को याद करते हुए उन्होंने बताया कि उद्यमिता को लक्ष्य बनाकर आई आई टी कानपुर से उपाधि प्राप्त की थी। कम्प्यूटर साइंस में उनकी रूचि थी इसलिए उसी को व्यवसाय बनाया। संस्थान के छात्रों के सामने ब्लॉक चेन, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, आर्टिफ़िशियल इन्टेलीजेंस एवं इंडस्ट्री 4.0 के क्षेत्रों में कार्य करने के अपार अवसर उपलब्ध हैं। यह क्षेत्र इतना व्यापक है कि स्टार्टअप के जरिये अपनी सोच को आयाम दिया जा सकता है। उन्होने सफलता का मूल मंत्र देते हुए कहा कि ज्ञान, लगातार अध्ययन तथा सही दिशा में किये गये परिश्रम से ही इंसान आगे बढ़ता है । शिक्षण संस्थान के दो काम होते हैं एक ज्ञान और दूसरा चरित्र निर्माण और यह दोनों कार्य संस्थान बखूबी निभा रहा है। इस दौरान संचालक मण्डल के अध्यक्ष प्रोफेसर के राधाकृष्णन ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि अच्छे छात्र बनने के साथ छात्रों को एक ऐसा इंसान बनने के लिए प्रेरित किया जाए जो समाज के लिए कल्याणकारी कार्य करके अपनी जिम्मेदारियों का सफलतापूर्वक निर्वाह करें। संस्थान के निदेशक प्रोफेसर अभय करंदीकर ने जानकारी देते हुए बताया कि संस्थान में जल संरक्षण, प्रदूषण तथा सामाजिक सरोकारों पर शोध कार्य हो रहे हैं। नए सत्र में संकाय सदस्यों की संख्या बढ़ाए जाने के पूरे प्रयास किये जा रहे हैं। लगभग पचास नए प्रोफेसर नियुक्त किए जाने की योजना है। समारोह में स्नातक, स्नातकोत्तर एवं पीएचडी के 1626 छात्र-छात्राओं को उपाधियां प्रदान की गई। इन उपाधियों का विस्तृत विवरण (पाठ्यक्रमानुसार) नीचे दिया जा रहा है।

उपाधि ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या

पीएच डी	196
एमटेक एवं पीएच डी (संयुक्त उपाधि)	12
एमटेक	333
एमबीए	50
एमडेज	14
एमएस	47
वीएलएफएम	38
एमएससी (5-वर्षीय)	1
एमएससी (2-वर्षीय)	118
डबल मेजर	17
बीटेक-एमटेक (दोहरी उपाधि)	110
बीटेक-एमडेज (दोहरी उपाधि)	1
बीटेक-एमएस (दोहरी उपाधि)	3
एमएस-पीडी (MS part of Dual Degree)	9
बीएस-एमएस (दोहरी उपाधि)	52
बीटेक	551
बीएस	74
कुल	1626

दीक्षान्त समारोह के अवसर पर संस्थान के प्रतिभावान छात्रों को विशिष्ट पुरस्कारों एवं मेडल से सम्मानित किया गया। पुरस्कार एवं मेडल प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के नाम निम्नलिखित हैं।

प्रेसीडेंट गोल्ड मेडलः श्री सोमेश्वर जैन, गणित एवं साइंटिफिक कम्यूटिंग

डायरेक्टर गोल्ड मेडलः सुनील कुमार पांडे, गणित एवं साइंटिफिक कम्यूटिंग, संगणक विज्ञान तथा अभियांत्रिकी

डायरेक्टर गोल्ड मेडलः अनंत नारायण वत्स, संगणक विज्ञान एवं अभियांत्रिकी

रतन स्वरूप स्मृति पुरस्कारः मुग्धा अरोड़ा, विद्युत अभियांत्रिकी

डॉ. शंकर दयाल शर्मा मेडलः संतोष कुमार सी, विद्युत अभियांत्रिकी

प्रेसीडेंट गोल्ड मेडलः श्री सोमेश्वर जैन, गणित एवं साइंटिफिक कम्यूटिंग

डायरेक्टर गोल्ड मेडलः सुनील कुमार पांडे, गणित एवं साइंटिफिक कम्यूटिंग, संगणक विज्ञान तथा अभियांत्रिकी

डायरेक्टर गोल्ड मेडलः अनंत नारायण वत्स, संगणक विज्ञान एवं अभियांत्रिकी

डॉ. शंकर दयाल शर्मा मेडलः संतोष कुमार सी, विद्युत अभियांत्रिकी

रतन स्वरूप स्मृति पुरस्कारः मुग्धा अरोड़ा, विद्युत अभियांत्रिकी

संस्थान के निदेशक प्रोफेसर अभय करंदीकर ने समारोह के अंत में विद्यार्थियों, संकाय सदस्यों एवं अभिभावकों का आभार व्यक्त किया तथा उपाधि प्राप्त करने वाले छात्र-छात्राओं के उज्ज्वल भविष्य की कामना की । तत्पश्चात राष्ट्रगान के साथ 52 वें दीक्षान्त समारोह 2019 का समापन हुआ।

राजभाषा प्रकोष्ठ

.....

हमारी संस्कृति एवं सभ्यता सदैव इस बात की गवाह रही है कि भारत देश में प्राचीन काल से ही गुरु-शिष्य के संबंध प्रगाढ़ रहे हैं। भारतीय संस्कृति में गुरु को ईश्वर से भी बढ़कर माना गया है इसलिए समाज में उनका स्थान हमेशा सर्वोपरि रहा है । शिष्य को सभ्य, सुसंस्कृत एवं विवेकी बनाने में गुरु द्वारा प्रदान की गई शिक्षा एवं योगदान को जीवन में कभी नहीं भुलाया जा सकता। गुरु द्वारा प्रदान की गई शिक्षा के कारण ही व्यक्ति समाज में आदर्श स्थापित कर पाता है। अच्छे गुरुओं का सान्निध्य व्यक्ति के जीवन को सार्थक बना देता है क्योंकि गुरु अपने शिष्य को अंधकार से प्रकाश एवं अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाते हैं। गुरु-शिष्य की यह परम्परा जीवन के हर क्षेत्र में फलदायी हो सकती है, जैसे- विज्ञान, अध्यात्म, संगीत, कला, वेदाध्ययन आदि। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर के पूर्व छात्रों ने भी अपने गुरुओं से ज्ञानार्जन करके तकनीक और व्यापार के क्षेत्र में देश-दुनिया में अपनी चमक बिखेरी है। प्रौद्योगिकी अनुसंधान के क्षेत्र में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर अंतर्राष्ट्रीय महत्व का तकनीकी संस्थान है जिसने पिछले सात दशकों से उद्यमी, टेक्नोक्रेट, शिक्षाविद्, वैज्ञानिक तथा अभियंता के रूप में देश-दुनिया को कई नगीने दिये हैं जिन्होंने अपनी योग्यता के दम पर राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। भले ही संस्थान से निकले छात्र आज सफलता के शिखर पर पहुंच गये हों लेकिन उन्होंने अपने मातृ संस्थान तथा गुरुओं को कभी नहीं भुलाया । संस्थान ने जब कभी और जिन परिस्थितियों में भी उन्हें याद किया, वह संस्थान को सहयोग/समर्थन/मार्गदर्शन प्रदान करने में कभी पीछे नहीं रहे। इन पूर्व छात्रों ने गुरु दक्षिणा के रूप में संस्थान को उदार दिल से आर्थिक सहयोग प्रदान करने की परम्परा का भी बखूबी निर्वहन किया है। यही कारण है कि संस्थान शैक्षणिक एवं अनुसंधान के क्षेत्र में आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए है।

अंतस् के नियमित स्तंभ 'गुरुदक्षिणा' के माध्यम से इस बार हम पाठकों का परिचय संस्थान के पूर्वछात्र डॉ. रंजीत सिंह से करा रहे हैं जिन्होंने जन कल्याण को अपने जीवन का लक्ष्य बनाते हुए समाज के निचले पायदान पर खड़े व्यक्तियों का उत्थान करने के लिए अपनी पूरी जिंदगी न्योछावर कर दी। डॉ. सिंह का मानना था कि समाज के शोषितध्वंचित वर्गों को भी समाज में बेहतर एवं सम्मानजनक जीवन जीने का उतना ही हक है जितना कि समाज के अन्य सुविधा सम्पन्न वर्गों के व्यक्तियों को। आइए, इस अंक के माध्यम से डॉ. सिंह की जीवन यात्रा से जुड़े कुछ रोचक तथ्यों को जानने की कोशिश करते हैं।

श्री विजय बहादुर सिंह डॉ रंजीत सिंह के भतीजे हैं जो उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि की चर्चा करते हुए बताते हैं कि डॉ. रंजीत सिंह का जन्म अर्सुन जिला, कानपुर (अब कानपुर देहात) में एक सभ्य किसान परिवार में हुआ था। हालांकि बेहतर जीवन की तलाश में उनका परिवार बाद में हरबंशपुर में आकर निवास करने लगा। उल्लेखनीय है कि हरबंशपुर यमुना नदी के कछार में स्थित एक छोटा सा कस्बा है। प्रारंभिक वर्षों के दौरान आर्थिक तंगी के कारण डॉ रंजीत सिंह के परिवार में शिक्षा का महत्व बहुत कम अथवा न के बराबर था परन्तु स्वतन्त्र भारत के शुरुआती वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन देखने को मिला जिसके कारण भारत के मध्यम वर्गीय परिवार अपने बच्चों को स्कूलों में दाखिला दिलाने/पंजीकृत कराने के लिए प्रेरित हुए और डॉ. सिंह के जीवन में भी तब नया मोड़ आया। डॉ. सिंह ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा के समय से ही एक होनहार विद्यार्थी के रूप में अपनी पहचान बनाई तथा परिवार के सदस्यों एवं अध्यापकों को अपनी प्रतिभा से प्रभावित किया।

श्री सालिगराम कटियार (सरपंच-स्थानीय पंचायत) डॉ. रंजीत सिंह के परामर्शदाता थे जिन्होंने उनके भविष्य को संवारने तथा सपनों को साकार करने के लिए उन्हें हर संभव सहायता प्रदान की। इसके अतिरिक्त उन्होंने उनके नाम पर एक छात्रवृत्ति का गठन भी किया ताकि जरूरत मंद विद्यार्थी लाभान्वित हो सके। डॉ. सिंह ने प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया। श्री रमेश यादव (उनके हाई स्कूल के अध्यापक) ही वह व्यक्ति थे जिन्होंने डॉ. सिंह की प्रतिभा को पहचान कर उन्हें कला वर्ग छोड़कर विज्ञान एवं गणित वर्ग का चयन करने के लिए प्रेरित किया। हालांकि अपने असफल विवाह के कारण डॉ. सिंह के जीवन में उन दिनों कई तरह के उतार-चढ़ाव भी आए। अपनी निष्ठा, दृढ़ संकल्प, आत्मविश्वास तथा परिवार एवं समाज से मिले अटूट सहयोग के कारण डॉ. रंजीत सिंह भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर में प्रवेश पाने में सफल हुए जहां पर उन्होंने शैक्षणिक पाठ्यक्रम में उत्कृष्ट

स्थान प्राप्त किया। डॉ. सिंह ने संस्थान के पदार्थ विज्ञान एवं अभियांत्रिकी विभाग से सन् 1965 में बी.टेक की उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात डॉ. सिंह उच्च अध्ययन के लिए अमेरिका चले गये जहां पर आपने मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी से डॉक्टर ऑफ साइंस की उपाधि प्राप्त की। डॉ. सिंह का मानना था कि समाज के पिछड़े, शोषित एवं वंचित वर्गों के लोगों को बेहतर एवं सम्मानजनक जीवन जीने का पूर्ण अधिकार है। उनकी यह सोच उनके जीवन-दर्शन में भी साफ तौर पर झलकती थी। डॉ. सिंह की स्पष्टवादिता उनके दोस्तों एवं संकाय सदस्यों के बीच काफी लोकप्रिय थी। अपने दृढ़ संकल्प एवं स्पष्टवादिता के कारण डॉ. रंजीत सिंह ने समाज में लंबे समय से चली आ रही कई कुप्रथाओं को खत्म करने का साहसिक कार्य किया। उन्होंने कई सुयोग्य व्यक्तियों की आर्थिक मदद करके उनके जीवन को संवारने का श्रेष्ठ कार्य भी किया । डॉ सिंह प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता में गहरा विश्वास करते थे। साथ ही साथ उन्होंने इंसानियत को हमेशा सर्वोच्च स्थान पर रखा। डॉ. सिंह ने संस्थान को $3,00000 डालर की आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई है जिसमें से $1,50,000 डालर की लागत से 'रोटी शिक्षा केन्द्र' स्थापित किया जहाँ संस्थान के आस-पास स्थित गाँवों में निवास करने वाले बेरोजगार व्यक्तियों के भविष्य को संवारने का कार्य किया जा रहा है। उनकी सहायता से चल रहे कार्यों का विवरण नीचे दिया जा रहा है:

दो वर्ष तक व्यावसायिक प्रशिक्षण संबंधी शिक्षा मुफ्त में उपलब्ध कराना ।

सभी (विशेष रूप से व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले अभ्यर्थियों) को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने का प्रयास करना। यह एक दीर्घकालीन लक्ष्य है जिसके अंतर्गत व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले अभ्यर्थियों को पहले तीन वर्षों में 25 प्रतिशत, छः वर्षों में 60 प्रतिशत तथा दस वर्षों में शत-प्रतिशत रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के प्रयास किये जाएंगे।

शेष $1,50,000 डालर संस्थान अपनी इच्छानुसार व्यय कर सकता है। किये गये अनुबंध के अनुसार केवल डॉ. रंजीत सिंह धर्मादा निधि से प्राप्त आय को ही संस्थान अपनी किसी गतिविधि में इस्तेमालकर सकता है।

जीवन में कई बार ऐसे क्षण भी आते हैं जब शब्द, भावनाओं एवं प्रेम की गहराई की थाह लेने में असफल हो जाते हैं । वस्तुत: डॉ सिंह का स्वभाव एवं सत्कर्म के प्रति समर्पण इस स्तर का था जिसे शब्द की सीमा में बाँधना मुश्किल है, फिर भी इस अवसर पर आइए, हम डॉ. रंजीत सिंह द्वारा किये गये श्रेष्ठ कार्यों को याद करते हुए उनकी विरासत एवं मधुर यादों को संचित करने का कार्य करें। डॉ सिंह दूरदर्शी, स्वप्नदर्शी, विलक्षण प्रतिभा, जोखिम लेने वाले, उत्साही, उद्यमी एवं लोकहितैषी जैसी प्रतिभाओं के धनी थे। डॉ. सिंह ने जीवन में आने वाली हर चुनौती का साहसपूर्वक सामना किया। आपकी पहचान समाज के शोषित एवं वंचित वर्गों के हितों/अधिकारों की रक्षा करने वाले कट्टर समर्थक की रही है। आपने भारत के अन्दर जन कल्याण से जुड़ी कई परियोजनाओं को आर्थिक मदद मुहैया कराई है। जिनमें से भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर स्थित 'रोटी शिक्षा केन्द्र' सबसे प्रमुख उपलब्धि/परियोजना के रूप में मानी जाती है। यह संस्था डॉ.सिंह के गृह-नगर के आस-पास निवास करने वाले समाज के शोषित/वंचित वर्गों के लोगों के कल्याण के प्रति समर्पित है। संस्था आस-पास के लोगों को उनके भविष्य को संवारने एवं बेहतर जिन्दगी जीने के लिए शिक्षित-प्रशिक्षित करने का कार्य करती है। बड़ी दिलचस्प बात यह है कि डॉ सिंह के शब्दकोष में 'नहीं' शब्द कभी नहीं रहा। आपने हमेशा समस्या का समाधान निकालने का ही उपक्रम किया। डॉ. सिंह की पहचान जीवन भर सच्चे मानवतावादी रूप में होती रही। दूसरों की सहायता करना डॉ. सिंह के जीवन का सदैव लक्ष्य रहा।

डॉ. रंजीत सिंह के एक पुराने साथी श्री पी के रस्तोगी बताते हैं कि "मैंने न्यूयार्क की स्टेट यूनिवर्सिटी में अपने अध्ययन के दौरान डॉ. सिंह को दो वर्षों तक काफी करीब से देखा एवं जाना। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर से स्नातक होने के कारण उन दिनों हम दोनों एक इनोवेटर की तरह उस समय के ज्वलंत मुद्दों पर विचार करते थे । यहां मैं इस बात का उल्लेख जरूर करना चाहूंगा कि अनजान व्यक्तियों से वार्तालाप करते समय डॉ. सिंह मुझसे कहीं अधिक निडर दिखाई पड़ते थे तथा बड़ी ही साफगोई से उनसे वार्तालाप करते थे।" यदि एक पंक्ति में डॉ रंजीत के समग्र व्यक्तित्व का वर्णन करना हो तो कहा जा सकता है कि लोगों के सुख्द भविष्य हेतु मानवता की सतत् सेवा ही उनका ध्येय था।

संस्थान को निश्चित रूप से डॉ. रंजीत सिंह के इस लोकोपकारी सेवाभाव पर गर्व है जिन्होंने जन कल्याण को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। डॉ. रंजीत सिंह के इस लोकोपकारी सेवाभाव के फलस्वरूप समाज के अनेकानेक व्यक्ति लाभान्वित हुए हैं जो समाज एवं देश को सकारात्मक दिशा प्रदान करने में आज अपना योगदान प्रदान कर रहे

हैं। संस्थान को अपने उन समस्त पूर्व छात्रों पर भी गर्व है जिन्होंने न केवल अभियांत्रिकी एवं विज्ञान के क्षेत्र में योगदान प्रदान करके देश के तकनीक एवं वैज्ञानिक पक्ष को मजबूत किया है अपितु जन कल्याण के लिए भी अनेक उपयोगी परियोजनाएं संचालित की हैं। और उनके योगदान से समाज तथा देश सुदृढ़ एवं सशक्त हुआ है जिनसे आज समाज किसी न किसी रूप में लाभान्वित हो रहा है। संस्थान अपने पूर्वछात्रों से अपेक्षा करता है कि वे आगे भी अपने अनुसंधान एवं योगदान से देश-दुनिया में भारत का नाम इसी तरह रोशन करते रहेंगे और भारत को शीघ्र ही विकासशील देश के श्रेणी से निकाल कर विकसित देशों की कतार में खड़ा करने में अपनी सार्थक भूमिका निभायेंगे।

राजभाषा प्रकोष्ठ

.....

बेटियाँ वरदान है

बेटी की किलकारी के बिन,
घर धनवान नहीं होता।
पैजनियों की रून-झुन के बिन
घर सुखधाम नहीं होता।।1

बेटी की प्यारी मुस्कानों से,
जगमगाता है आसमान भी,
बेटियाँ अमृत हैं, वरना यह
जीवन और जहान नहीं होता।।2

माँ की ममता, बापू के दिल की
खिलती कोमल कलियाँ हैं
जिस घर जायेंगी, सच मानो
इनसा वरदान नहीं होता।।3

सच्चे दिल से प्यार बाँट कर
देखो तो इन माँसूमों को
रौशन कर देंगी नाम तुम्हारा
पाकर ऊँचे सम्मानों को।।4

बिटियों की क्षमता को मानो
ईश्वर की रचना पहचानो
बिटियों जैसा इस दुनिया में
कोई ममतावान नहीं होता।।5

मानस की गौरव गाथा है
राधा मीरा की परिभाषा है
जीवन में बिटियों से बढ़कर
कोई भी वरदान नहीं होता।।6

आर के दीक्षित
परिसरवासी

किसी भी शैक्षणिक संस्थान को राष्ट्रीय तथा अंतराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति दिलाने में उसकी शैक्षिक गुणवत्ता मुख्य भूमिका निभाती है। निश्चित रूप से इस ख्याति के लिए उस संस्थान के शिक्षकों के योगदान को कभी नहीं भुलाया जा सकता। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर अंतर्राष्ट्रीय महत्व का एक तकनीकी संस्थान है। संस्थान ने अपनी शैक्षणिक गुणवत्ता के कारण देश-विदेश में अपना परचम फहराया है। संस्थान से निकले छात्र आज देश दुनिया में बड़े-बड़े उद्यमी के रूप में अपनी पहचान बनाए हुए हैं साथ ही अपने स्वामित्व में भी कई बड़ी कंपनियों का नेतृत्व कर रहे हैं। यह सब संभव हुआ है यहाँ के शिक्षकों द्वारा प्रदत्त शिक्षा एवं संस्कारों के कारण। संस्थान की शैक्षणिक गुणवत्ता को बुलंदियों पर पहुँचाने में संस्थान के तमाम शिक्षकों का योगदान रहा है। संस्थान की पहचान जिस रूप में होती है उसे दिलाने में संस्थान के अनेकों संकाय सदस्यों ने अपना जीवन खपा दिया है। इस अंक में साक्षात्कार स्तंभ के माध्यम से हम आपका परिचय संस्थान के पूर्व प्रोफेसर अश्विनी कुमार जी से करा रहे हैं। प्रोफेसर अश्विनी कुमार ने संस्थान के सिविल अभियांत्रिकी विभाग में अपनी शैक्षणिक सेवाएं प्रदान करते हुए संस्थान को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दिलाने में जितनी शिद्दत से आपनी भूमिका निभाई है उतनी ही विभिन्न प्रशासनिक पदों की जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए संस्थान के आंतरिक प्रशासनिक ढ़ांचे को मजबूत करने में भी निभाई है। पत्रिका के इस अंक के माध्यम से हम पाठकों को डॉ अश्विनी कुमार के शैक्षणिक, प्रशासनिक एवं निजी जीवन संबंधी पहलुओं से परिचित करा रहे हैं।

प्रश्न-सर, कृपया अपने प्रारंभिक जीवन एवं शिक्षा बारे में कुछ बताएं।

उत्तर-मेरा जन्म 6 नवम्बर, 1947 (अधिकारिक रूप से 6 जून, 1948) को हुआ। मेरे दो बड़े भाई हैं। मैंने अपने छोटे भाई को दुर्भाग्यवश 1969 में खो दिया था। मेरे पिता उत्तर प्रदेश के तकनीकी शिक्षा विभाग में कार्यरत थे। मेरे माता-पिता नर्सरी और स्कूली शिक्षा के पक्ष में बिलकुल नहीं थे बल्कि इसके स्थान पर वह घर पर ही प्रारंभिक शिक्षा दिए जाने में विश्वास करते थे। मेरी औपचारिक शिक्षा कक्षा 6 से आर्यनगर इंटर कॉलेज कानपुर में प्रारंभ हुई। तत्पश्चात् मैंने कक्षा 8 में बीएनएसडी इंटर कॉलेज में प्रवेश लिया। इस कॉलेज की ख्याति उत्तर प्रदेश बोर्ड की कक्षा 10वीं एवं 12वीं की परीक्षाओं में प्रदेश को टॉपर विद्यार्थी प्रदान करने के लिए विख्यात था। मैंने भी 10वीं एवं 12वीं की परीक्षा में कॉलेज में टॉप किया तथा उत्तर पदेश

बोर्ड की सूची में क्रमश 12वां एवं 8वां स्थान हासिल किया।

प्रश्न-सर, कृपया अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि (पत्नी एवं बच्चों) के बारे में कुछ बताइएं।

उत्तर-सन् 1974 में अध्ययन के दौरान जब मैं भारत आया तभी माता-पिता ने 27 अगस्त को मेरी शादी तय करके उसे सम्पन्न करा दिया। हम पति-पत्नी लगभग एक साल तक विदेश में रहे। छः महीने कनाडा और छः महीने इंग्लैण्ड में। मेरी पत्नी सुजाता उत्तर प्रदेश के मुज़फ्फरनगर से ताल्लुक रखती हैं। हमारे दो बच्चे हैं पुत्री विशाखा एवं पुत्र अभिनव। बेटी की शादी दिसम्बर 2002 में नितिन गोयल से हुई तथा अभिनव की शादी नवम्बर 2011 में सुषमा के साथ हुई। 2010 तक अमेरिका में रहने के पश्चात विशाखा एवं नितिन सिंगापुर चले गये। नितिन कम्प्यूटर साइंस में मास्टर ऑफ साइंस एवं स्टूडेन्टस एडमिनिस्ट्रेशन में परास्नातक है जबकि विशाखा क्लीनिकल सूक्ष्मजैविकी में मास्टर ऑफ साइंस हैं। दोनों ही सिंगापुर की बहुराष्ट्रीय कंपनी में कार्य कर रहे हैं। अभिनव एवं सुषमा दोनों ने विद्युत अभियांत्रिकी में मास्टर ऑफ साइंस की हुई है तथा अमेरिका के पोर्टलैण्ड में क्रमशः ऑन सेमीकन्डक्टर तथा इंटेल कंपनी में

कार्यरत हैं। हमारे दो नवासे हैं विशाखा एवं नितिन के वियान एवं अभिनव एवं सुषमा के रिहान ।

प्रश्न-सर, आपका विज्ञान एवं अभियांत्रिकी की ओर रुझान कैसे पैदा हुआ?

उत्तर-मेरे माता-पिता चाहते थे कि उनका बड़ा बेटा आइएएस बने। बड़े भाई ने उनके सपने को पूरा भी किया। मेरे दूसरे भाई ने यांत्रिक अभियांत्रिकी में स्नातक करने के पश्चात प्रबंधन का चयन किया था लेकिन मैं कुछ अलग करना चाहता था। मेरी महत्वाकांक्षा किसी विदेशी विश्वविद्यालय में अध्ययन करने की थी। कक्षा 12 के पश्चात मैं आई आई टी एवं रूड़की विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षाओं में बैठा। आई आई टी प्रवेश परीक्षा में 176वीं रैंक हासिल हुई फलस्वरूप मुझे आई आई टी कानपुर के विद्युत अभियांत्रिकी विभाग में प्रवेश मिला। जब कि रूड़की विश्वविद्यालय में मुझे 20वीं रैंक हासिल हुई। मैंने रूड़की विश्वविद्यालय के सिविल अभियांत्रिकी विभाग में प्रवेश लेना पसंद किया। उल्लेखनीय है कि रूड़की विश्वविद्यालय की सिविल अभियांत्रिकी उन दिनों अपने चरम पर थी। उन दिनों आई आई टी से बी टेक एवं एम टेक छात्र ही उच्च शिक्षा के लिए विदेशों का रुख किया करते थे। मुश्किल से ही रूड़की विश्वविद्यालय से पढ़े हुए छात्र विदेश में जाकर अध्ययन करने की सोचा करते थे। सिविल अभियांत्रिकी के अधिकतर छात्र संघ लोक सेवा आयोग की अभियांत्रिकी सेवा परीक्षा में अपनी किस्मत आजमाना चाहते थे लेकिन मेरा संघ लोक सेवा आयोग की इस परीक्षा की ओर बिल्कुल भी रुझान नहीं था। मेरी इच्छा विदेश में जाकर उच्च अध्ययन करने की थी। मैंने इस बारे में तीन वरिष्ठ प्रोफेसरों से विचार-विमर्श किया। काफी विचार-विमर्श के उपरान्त अंततः कनाडा के वाटरलू विश्वविद्यालय में सिविल अभियांत्रिकी के एम एस पाठ्यक्रम में प्रवेश ले लिया। मार्च 1974 में मैंने एम एस एवं पीएच डी दोनों उपाधियों के लिए आवश्यक अर्हताएं पूरी कर लीं। वाटरलू विश्वविद्यालय कनाडा एवं कैंब्रिज विश्वविद्यालय, इंग्लैण्ड से पोस्ट-डॉक्टरेट करने के बाद मैंने 9 अक्टूबर सन 1975 को भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर के सिविल अभियांत्रिकी विभाग में प्रवक्ता के रूप में अपना कार्यभार ग्रहण किया।

प्रश्न-सर, भा.प्रौ.सं. कानपुर में अपने 37 वर्षों के सफर (चुनौती आदि) के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर-शैक्षणिक संस्थान में संकाय सदस्यों का प्रमुख उत्तरदायित्व शिक्षण एवं शोध कार्यों को निष्पादित करना होता है परन्तु प्रशासनिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करना भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है। यह संदेश अलिखित परन्तु स्पष्ट है। मेरा मानना था कि व्यक्ति को किसी पद की चाहत में उदासीन या बेचैन नहीं होना चाहिए बल्कि उत्तरदायित्व एवं प्रबंधन का ऐसा प्रदर्शन तथा निर्वहन में अपने संपूर्ण सेवा-काल के दौरान मैंने कई प्रशासनिक पदों पर रहते हुए उनका बखूबी निर्वहन किया । इन पदों में वाइस चेयरमैन चेयरमैन जेईई संयुक्त प्रवेश परीक्षा (1983-85), को-ऑर्डिनेटर गुणवत्ता सुधार कार्यक्रम (क्यूआईपी) (1987), अधिष्ठाता शैक्षणिक कार्य (1988-90), अधिष्ठाता संकाय कार्य (1997-98), उपनिदेशक (1998-2001) आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त कई अन्य प्रशासिक पदों पर भी रहते हुए मैंने अनेक जटिल चुनौतियों का सामना किया है और उनका उचित तथा तार्किक ढ़ंग से समाधान किया। उदाहरणार्थ:

आई आई टी की संयुक्त प्रवेश परीक्षा (जेईई) 1984 के प्रश्न पत्रों की छपाई में अचानक समस्याएं आ गईं जिनका समाधान इस ढंग से किया गया कि देश में किसी को भी परीक्षा के आयोजन पर अंगुली उठाने का अवसर नहीं मिला। इससे प्रदर्शित होता है कि आई आई टी सिस्टम में आम आदमी का कितना गहरा विश्वास था।

1988 के मई महीने के दौरान, दीक्षान्त समारोह से तीन दिन पूर्व, दीक्षान्त समारोह के पंडाल में आग लग गई। दीक्षान्त समारोह का आयोजन तयशुदा कार्यक्रम के अनुसार किया जाना था। आग लगने के पश्चात इस पंडाल को ठीक-ठाक करने के लिए दिन-रात युद्ध स्तर पर कार्य किया गया और स्थिति यह थी कि कोई सोच भी नहीं सकता था कि 3 दिन पहले इसी पंडाल में आग लगी थी।

सरकार द्वारा स्कॉलरशिप की न्यूनतम अवधि सुनिश्चित करने के मुद्दे को लेकर पीएच डी विद्यार्थियों द्वारा अक्टूबर 1988 में रिले स्ट्राइक की गई। यह स्ट्राइक लगभग 20 दिनों तक चली और तभी समाप्त हुई जब यह निर्णय हुआ कि विद्यार्थियों को स्कॉलरशिप की नियत अवधि के पश्चात स्पेशल असिस्टेंटशिप की घटी हुई राशि प्रदान की जाएगी।

चौथे वेतन आयोग के तहत प्रदान किये गये वेतनमान से संस्थान के संकाय सदस्य खुश नहीं थे, उन्होंने जेईई की उत्तर पुस्तिकाओं की ग्रेडिंग का बहिष्कार कर दिया तथा 1989 के दीक्षान्त समारोह में भाग लेने से भी इंकार कर दिया। संचालक मंडल द्वारा दीक्षान्त समारोह को

स्थगित कर दिया गया चूंकि इस दीक्षान्त समारोह में उपाधि पाने वाले समस्त छात्र कैंपस पहुँच चुके थे इसलिए दीक्षान्त समारोह का आयोजन किया जाना जरूरी था। तब परिस्थिति की गंभीरता को समझते हुए व्याख्यान कक्ष संख्या-7 में एक सादा समारोह आयोजित करके इन सभी छात्रों को उपाधियाँ एवं मेडल प्रदान किए गये। जिसमें अधिष्ठाता शैक्षणिक कार्य के रूप में मैंने समस्त विभागाध्यक्षों की भूमिका निभाई।

वर्ष 1996 में भारत सरकार द्वारा घोषणा की गई कि समस्त भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों में विद्यार्थियों की संख्या दोगुनी की जाएगी। विद्यार्थियों की बढ़ी संख्या को व्यवस्थित करने के लिए अतिरिक्त छात्रावासों एवं प्रयोगशालाओं की आवश्यकता थी। जिन्हें पूरा करने के लिए अगले पाँच वर्ष में कई नई परियोजनाओं को प्रारंभ किया गया। महिला छात्रावास, पुरूष छात्रावास संख्या-7, व्याख्यान कक्षों का विस्तार, संगणक विज्ञान एवं अभियांत्रिकी विभाग के लिए पृथक विभाग का निर्माण एवं डिस्पले टेक्नालॉजी के लिए सैमटेल केन्द्र के भवन का निर्माण इनमें से कुछ प्रमुख परियोजनाएं थीं। दूसरी महत्वपूर्ण चुनौती संकाय सदस्यों की संख्या दोगुनी करने की थी जिसके लिए आवर्ती विज्ञापन एवं अत्यअल्प अंतराल पर नियमित रूप से चयन समितियों का आयोजन किया जाना था।

सेवा क्षेत्रों में निजीकरण के मुद्दे की जाँच को लेकर सन् 1994 में एक समिति का गठन किया गया। जिसका अध्यक्ष मैं था। मैंने चरणबद्ध तरीके से कई क्षेत्रों में निजीकरण की सिफारिश की लेकिन किसी कारणवश समिति की रिपोर्ट पर 1998 तक निर्णय नहीं लिया जा सका। चूँकि सरकार द्वारा चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की भर्ती पर रोक लगा दी गई थी इसलिए इस विषय पर पुनः चर्चा की गई। बहुत अधिक प्रयासों एवं दलीलों के पश्चात निजीकरण की व्यवस्था को एक छात्रावास में लागू किया गया। इस निर्णय के विरूद्ध मेस कर्मचारियों में भारी रोष था जिसे सौहार्दपूर्ण ढंग से शांत कर दिया गया।

प्रश्न-सर, परिसर की खूबसूरती एवं कैंपस-जीवन के बारे में आप क्या कहना चाहते हैं?

उत्तर-मैंने परिसर में 37 वर्षों तक निवास किया जिसमें टाइप-4 के मकान संख्या 450 में 32 वर्षों तक। उपनिदेशक बनने के बाद भी मैंने कभी टाइप-5 के मकान में जाने का नहीं सोचा हालांकि मेरे पूर्वाधिकारियों ने अपनी पसंद के बड़े घरों में निवास करना पसंद किया। मैंने टाइप-4 के अपने कोने वाले मकान का खूब आनंद लिया। यह मकान हरे-भरे लॉन एवं विविध प्रकार के फूलों-फलों से सुसज्जित था जिसका मेरी पत्नी सुजाता ने बहुत ही सावधानीपूर्वक रख-रखाव किया था। इस मकान में अपने लम्बे ठहराव के दौरान इसके लॉन में आयोजित मिलन सभाओं (गेट-टू-गेदर) की संख्याओं की गणना मेरे लिए मुश्किल है। इसी मकान में मेरी पत्नी ने लगभग 20 साल तक प्री-नर्सरी के बच्चों के लिए एक प्ले स्कूल का संचालन किया। इसी मकान के लॉन में हमनें अपने दोनों बच्चों की शादियाँ भी की।

प्रश्न-सर, संस्थान में शैक्षणिक, अनुसंधान एवं प्रशासनिक कार्यों से जुड़े रहने के पश्चात अब आप भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान गाँधीनगर में अतिथि संकाय के रूप में अपनी सेवाएं दे रहे हैं। संस्थान से दूर होने के पश्चात आप कैसा महसूस कर रहे हैं?

उत्तर- संस्थान से मुझे जून 2013 में सेवानिवृत्त होना था। संस्थान में संकाय सदस्यों की पुनर्नियुक्ति से संबंधित योजना पर पिछले कई वर्षों से रोक लगी हुई थी। दिसम्बर 2011 में मुझे भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान गाँधीनगर में छः माह के लिए अतिथि संकाय के रूप में नियुक्ति मिली। मैं भी इस बात का पता लगाना था कि सेवानिवृत्ति के पश्चात कैसे व्यस्त रहा जा सकता है। इन छः माह में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर में पुनर्नियुक्ति से संबंधित योजना पर कोई निर्णय नहीं हो सका था। फलस्वरूप संस्थान में मैंने 1 जुलाई 2012 को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली और गाँधीनगर चला गया। तत्पश्चात मुझे पता चला कि भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर में पुनर्नियुक्ति से संबंधित योजना प्रारंभ कर दी गई है। लेकिन अब मेरे लिए बहुत देर हो चुकी थी। हम भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान गाँधी नगर के परिसर से लगभग 20 किलोमीटर दूर चाँदखेड़ा के एक फ्लैट में दिसम्बर 2011 से निवास कर रहे हैं। 1975 से लगातार परिसर में निवास करने के पश्चात्, अब इस अवस्था में परिसर से बाहर निवास करने के अपने कई फायदे हैं। अहमदाबाद का शीतकालीन मौसम इतना कठोर नहीं है जितना की कानपुर शहर का। यही कारण है मुझे इस शहर में रहने के लिए प्रेरित करने का । जब कभी मुझे भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर में भ्रमण करने का अवसर प्राप्त हुआ मैंने कभी नहीं छोड़ा।

प्रश्न-वर्ष-2016 का इंस्टीट्यूट फेलों चुने जाने पर आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर-संस्थान के स्थापना दिवस के अवसर पर दिनांक 2 नवम्बर 2017 को मुझे मिले इंस्टीट्यूट फेलो अवार्ड को लेकर मैं कुछ खास उत्सुक नहीं था परन्तु सबसे बड़ी संतुष्टि मुझे इस बात की थी कि संस्थान के विकास में दिये गये मेरे समग्र योगदान के लिए मेरी प्रशंसा की गई। मैं आज जो कुछ भी हूँ वह भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर के साथ अपने वर्षों के जुड़ाव के कारण ही हूँ। मैं पिछले सात सालों से परिसर की जिंदगी से दूर रहा हूँ परन्तु आज भी मैं परिसर में गुजारे अपने हर-पल हर दिन का स्मरण करता हूँ, यह जानते हुए भी कि पुराने दिन कभी लौटकर नहीं आएंगे।

धन्यवाद सर !

राजभाषा प्रकोष्ठ

.....

सहसा विदधीत न क्रिया
मविवेक परमापदां पदम्।
बृणुते हि विमृश्यकारिणं
गुणलुब्धा स्वयमेव सम्पद।।

किसी कार्य को बिना सोचे-विचारे अचानक नहीं कर डालना चाहिए क्योंकि अविवेक (बिना सोचे-विचारे कार्य करना) विपत्तियों, दुखों का कारण है। विचारशील मनुष्य को गुणों से प्रेम करने वाली सम्पत्तियाँ स्वयं चुन लेती हैं।

विदुर-नीति

गीत

हम हैं ऐसे पेड़ किसी के आँगन के
झूले जिस पर नहीं पड़े हैं सावन के

अधर हमारे जनम-जनम से प्यासे हैं
देह हमारी सावन में भी झुलसी है,
हमको कोई अर्घ्य नहीं देने आता
हमसे फिर अच्छी आँगन की तुलसी है,

जाने कितने विषधर तन से लिपटे हैं,
वैसे तो हम पेड़ नहीं हैं चंदन के।।

जब भी महकी हवा बदन को छूती है
जाने कैसा-कैसा मन हो जाता है,
अन्तर्मन में सुविधा रास रचाती हैं
सूना आँगन वृंदावन हो जाता है,

तितली जब फूलों से बातें करती है
आते हैं तब याद हमें दिन बचपन के।।

नीड़ नहीं है कोई अपनी बाहों में
हमसे तो अब पंछी भी कतराते हैं,
गूँगी पीर हमारी कोई क्या जाने
हम उनको आवाज़ नहीं दे पाते हैं,

हमसे मिलने कभी बहारें आयेंगी
इस आशा में बीत रहे दिन जीवन के

साभार
डॉ.अंसार कम्बरी

Value शब्द लैटिन मूल के 'Valere' शब्द से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है योग्य एवं सशक्त बनने के लिए इच्छा शक्ति का होना वांछनीय है। मूल्यों में समस्त महत्वपूर्ण धार्मिक विश्वास, नैतिक दृष्टिकोण, जीवन-दर्शन और राजनीतिक विचारधाराएं शामिल होती हैं। मूल्य समाज और उसकी संस्कृति को संरक्षित करने में सहायक होते हैं। समाज में कोई भी महत्वपूर्ण परिवर्तन संस्कृति में अनुकूल परिवर्तन के कारण ही घटित होता है। इस तरह व्यक्तिगत जीवन में मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। यदि व्यक्ति अपने विचारों एवं भावनाओं में विश्वास रखता है तो निश्चित रूप से व्यक्ति के अन्दर परिवर्तन देखने को मिलता है जिसके फलस्वरूप उसे सुख एवं शांति प्राप्त होती है। इस प्रकार मूल्य मनुष्य को स्वस्थ और समृद्ध बनाने वाला एक कोष है। शोध कर्ताओं के लिए अब समय आ गया है कि वे वर्तमान मशीनी जीवन शैली के इस दौर में मूल्य ह्रास के कारण उत्पन्न विकारों के संदर्भ में मूल्य शिक्षा की महत्ता पर गहरा चिंतन-मनन तथा अध्ययन करें।

मूल्य, राष्ट्र के दर्शन और उसकी शैक्षणिक प्रणाली का अभिन्न हिस्सा होता है। मूल्य, जीवन के मार्गदर्शक सिद्धांत भी होते हैं जो व्यक्ति के शारीरिक, सामाजिक और मानसिक स्वास्थ्य के सुचालक होते हैं। वर्तमान शिक्षा के माध्यम से छात्रों के मन में वांछनीय मूल्यों को भरने की आवश्यकता लंबे समय से महसूस की जा रही है। इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए शिक्षक को युवाओं के लिए एक सकारात्मक भूमिका निभाने के लिए तैयार रहना चाहिए।

बच्चों को मूल्यों के बारे में जितना अधिक शिक्षित किया जाता है वह उतना ही अधिक इन्हें ग्रहण करते हैं। यह सिद्धान्त पुनः इस तथ्य पर बल देता है कि हमें युवाओं को मूल्यों के बारे में शिक्षा प्रदान करनी चाहिए तथा उनके सामने स्वयं को एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। यदि बच्चों को मूल्यों एवं अच्छे नैतिक चरित्र के बारे में शिक्षित नहीं किया जाएगा तो बच्चे की चेतना पर शुरू से लेकर आखिर तक इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। उदाहरण के रूप में यदि हम चाहते हैं कि युवा हमारा सम्मान करें तो हमें भी उनके लिए सम्मान प्रकट करना चाहिए। हम जिन मूल्यों की शिक्षा युवाओं को देना चाहते हैं, हमारे आचरण एवं व्यवहार से वह साफ झलकने भी चाहिए।

मूल्य शिक्षा, मजबूत चरित्र एवं सुसंस्कारों से सज्जित व्यक्ति का निर्माण करती है। विद्यालयों को मूल्य शिक्षा प्रदान करने में अपनी

महती भूमिका निभानी चाहिए। मूल्य आधारित शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को (तार्किक दृष्टिकोण एवं मूल्यों के माध्यम से) बाहरी दुनिया का सामना करने के लिए प्रशिक्षित करना होता है। यह विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास की एक प्रक्रिया है। मूल्य आधारित शिक्षा में चारित्रिक विकास, व्यक्तित्व विकास, लोक विकास और आध्यात्मिक विकास शामिल हैं। मूल्य आधारित शिक्षा के माध्यम से संवेदनशीलता, समय की पाबंदी, स्वच्छता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, श्रम-मर्यादा, खेल भावना, समानता, भाईचारा, देशभक्ति, पंथनिरपेक्षता, सहयोग, सहिष्णुता, बुजुर्गों के प्रति सम्मान, अहिंसा, राष्ट्रीय अखंडता तथा सार्वभौमिक भाईचारे जैसे गुणों का विकास किया जा सकता है। कुछ लोग तर्क देते हैं कि व्यक्तित्व बच्चे का स्वाभाविक चरित्र होता है और इसे कभी भी बदला अथवा संवारा नहीं जा सकता हालांकि ऐसा सोचने वाले व्यक्ति अक्सर गलत साबित होते हैं।

व्यक्तित्व विकास के लिए मूल्य आधारित शिक्षा अनिवार्य है जो जीवन भर विद्यार्थी के लिए मार्गदर्शक के रूप में कार्य करती है। नीचे मूल्य आधारित शिक्षा की कुछ प्रमुख विशेषताओं का नीचे उल्लेख किया जा रहा है-

- ✧ यह छात्रों को अपना भविष्य संवारने के लिए एक सकारात्मक दिशा प्रदान करती है तथा अपने जीवन के उद्देश्य चिह्नित करने में भी उनकी मदद करती है।
- ✧ यह विद्यार्थी को जीवन जीने का सर्वश्रेष्ठ तरीका सिखाती है जो उसके स्वयं तथा उससे जुड़े लोगों के लिए भी लाभप्रद हो सकता है।
- ✧ मूल्य शिक्षा विद्यार्थियों को अधिकाधिक जिम्मेदार और समझदार नागरिक बनाने में मदद करती है।
- ✧ मूल्य शिक्षा विद्यार्थियों को बेहतर तरीके से जीवन के यथार्थ को समझाने में भी मदद करती है तथा जिम्मेदार नागरिक के रूप में

एक सफल जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है।

- ✧ मूल्य शिक्षा परिवार और दोस्तों के साथ प्रगाढ़ संबंध स्थापित करने में भी विद्यार्थियों की मदद करती है।
- ✧ मूल्य शिक्षा विद्यार्थियों के चरित्र और व्यक्तित्व को विकसित करती है।
- ✧ मूल्य शिक्षा छात्र के मस्तिष्क में जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करती है।

उल्लिखित तथ्यों के आधार पर कह सकते हैं कि मूल्य आधारित शिक्षा बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए अनिवार्य है। मूल्य शिक्षा, मजबूत चरित्र एवं जीवन मूल्यों से सुसज्जित एक समझदार व्यक्ति का निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है इसलिए हमें समाज के जिम्मेदार नागरिक होने के नाते समझदारीपूर्वक तथा तार्किक ढंग से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना चाहिए।

संक्षेप में कह सकते हैं कि मूल्य शिक्षा समय की मांग है । वास्तविक चुनौती इस शिक्षा में निहित है कि युवा सावधानीपूर्वक अपने विषयों/क्षेत्रों का चयन करें क्योंकि घर एवं कार्य-स्थलों, दोनों जगहों पर अक्सर मूल्यों और व्यवहार में भारी अंतर देखने को मिलता है। वर्तमान मे युवाओं की संवेदनाएं क्षीण हो गई हैं क्योंकि ऐसा देखा गया है कि वह युवा जो सख्ती से आदर्श मूल्यों का पालन करते है उन्हें अव्यवहारिक कहा जाता है। हम सभी को आत्मविश्लेषण करने की आवश्यकता है। इसके अलावा उपदेश एवं अनुसरण के मध्य अंतर को भी कम करने का प्रयास करना चाहिए।

अचला जोसन
प्रधानाचार्या, कैंपस स्कूल

.....

कविता

दिवास्वप्नो का बसेरा

क्षितिज के उस पार क्या है?

जो दृश्य का विस्तार सीमित

चाहता हूँ देखना वो कौन है मुझमें अपरिचित.....

आशाओं की इस कुटीर में

बाल हठ पे मन ये मेरा

निशा मांगे तारों पूरित

और संग मोहक सबेरा

चाहतों की नन्ही किसलय

अम्बर सा आकार धरती

चाहता हूँ देखना वो कौन है मुझमें अपरिचित.....

धुर सुनिश्चित अंत उसका

वो सभी जो सृजित होते,

एक नये आरम्भ हैं वो

अंत से जो प्रतीत होते

आदि से अंत तक के

हर शब्द हैं अब सारगर्भित

चाहता हूँ देखना वो कौन है मुझमें अपरिचित.....

'असीम'
वेदप्रकाश तिवारी, परिसरवासी

जैसा की विषय वस्तु से ही समझ आ जाता है कि हम यहाँ सही अर्थों में शिक्षा से प्राप्त होने वाले मूल्यों पर बात करने जा रहे हैं । आज तक हम सबको यहीं बताया और सिखाया गया है कि जीवन में शिक्षा का बहुत अधिक महत्व हैं, बिना शिक्षा के मानव जीवन पशु समान होता है, जो कि ब्रह्मसत्य है। किसी भी समाज और देश की सामाजिक, वैचारिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रगति के लिए शिक्षा अनिवार्य है। आज विश्व-पटल पर भारत का परचम इसी शिक्षा और शोध के चलते लहरा रहा हैं। विगत समय में भारतवर्ष के नालंदा विश्वविद्यालय जैसे शिक्षण संस्थान व्यवहारिक और अध्यात्मिक शिक्षा के उत्कृष्ट केंद्र जाने जाते थे, किन्तु देश में अंग्रेजों के आगमन के बाद कालांतर में मानव-जीवन में शिक्षा के मूल्य को दरकिनार करके सिर्फ तकनीकी सहायकों की फ़ौज बनाने के चलते हमारी अपनी व्यवहारिक और अध्यात्मिक शिक्षा की परिपाटी शून्य होती चली गयी।

शासन तंत्र चाहे राजशाही हो या लोकतंत्र जो भी हो, इसकी पसंदीदा गतिविधियों में से एक होता है शिक्षा नीति में बदलाव। जिसके ज़रिये ही वो एक तरफ जनता में खुद के लिए विश्वास भरने की कोशिश करता है तो दूसरी तरफ अपने तंत्र और अपने वंश, दोनों की निरंतरता बनाये रखने की कोशिश करता है। मुग़लों ने मदरसों की शिक्षा को बढ़ावा दिया तो अंग्रेजों ने गुरुकुल को नष्ट कर क्लर्क फैक्ट्री शुरु की जो आज तक चल रही है। 1947 की आज़ादी के बाद सरकारों ने अपने तमाम नेताओं को टेक्स्ट बुक में ठूंस कर उन्हें आज़ादी का मसीहा साबित करने की पुरजोर कोशिश की वहीं देश को आजादी दिलाने में जिन क्रांतिकारियों ने अपने प्राण निछावर कर दिए, उनका जिक्र गैरों की महफ़िल में होता रहा। इसी का असर हुआ कि शिक्षा की कीमत बढती गयी और उससे प्राप्त होने वाला जीवन मूल्य घटता गया।

जब हम शिक्षा की बात करते हैं तो सामान्य अर्थो में यह समझा जाता है कि इसमें हमें वस्तुगत ज्ञान प्राप्त होता है तथा जिसके बल पर कोई रोजगार प्राप्त किया जा सकता है और ऐसी शिक्षा से ही व्यक्ति समाज में आदरणीय बनता है ।

समाज और देश के लिए इस वस्तुगत ज्ञान का महत्व भी है क्योंकि शिक्षित राष्ट्र ही अपने भविष्य को सँवारने में सक्षम हो सकता है । आज कोई भी राष्ट्र विज्ञान और तकनीक की महत्ता को अस्वीकार नहीं कर सकता, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका उपयोग है । वैज्ञानिक विधि का प्रयोग कृषि और पशुपालन के क्षेत्र में करके ही हमारे देश में हरित क्रांति और श्वेत क्रांति लाई जा सकी है।

अतः वस्तुपरक शिक्षा हर क्षेत्र में उपयोगी है। परंतु जीवन में केवल पदार्थ ही महत्वपूर्ण नहीं हैं। पदार्थो का अध्ययन जहाँ राष्ट्र की भौतिक दशा सुधारने के लिए आवश्यक है तो वहीं जीवन मूल्यों का उपयोग कर हम उन्नति की सही राह चुन सकते हैं। आज की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है; पढ़-लिखकर धन कमाना। धन चाहे कैसे भी आता हो, इसकी परवाह न की जाए। यही कारण है कि बहुतायत में शिक्षित वर्ग भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने में सबसे आगे दिखाई दे जाता है ।शिक्षा प्राप्ति की एक सुविचारित नीति होनी चाहिए। छात्रों को शुरू से ही यह जानकारी देनी चाहिए कि जीवन में आगे चलकर उनको किन समस्याओं से जूझना होगा। छात्रों को पता होना चाहिए कि जीने के मार्ग अनेक हैं तथा उस मार्ग को ही चुनना श्रेयस्कर है जो व्यक्ति विशेष के स्वभाव के अनुकूल हो।

जैसा कि देश के कई नामीगिरामी शिक्षण संस्थान जिनमें हमारा आई आई टी कानपुर भी शामिल है, बच्चों में नैतिक शिक्षा की बातों में सत्य, क्षमा, दया, ईमानदारी, अहिंसा आदि बताने के लिए समय समय पर देश दुनियाँ के बुद्धिजिवियों को आमंत्रित करके बच्चों के साथ संवाद करवा कर ऊँची-ऊँची बातों को जीवन में उतारने के लिए बालकों को अवसर प्रदान करते हैं। बालकों की सहज बुद्धि में प्रयोगात्मक सच्चाईयाँ अधिक सहजता से प्रवेश करती हैं ।

शिक्षा के साथ नैतिक मूल्यों को संबद्ध करने का अर्थ यह नहीं है कि बालकों के निरंतर भारी होते हुए बस्ते में एक और किताब का बोझ डाल दिया जाए। इससे उनके जीवन में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं आ सकता क्योंकि बच्चे समझते हैं कि यह भी एक विषय है जिसमें अच्छे अंक लाने होंगे।

सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी (CMIE) द्वारा जारी आंकड़ों से यह बात सामने आई है और फरवरी, 2019 के दौरान देश में बेरोजगारी की दर 7.2 फीसदी तक पहुंच गई है। एक तरफ तो

सरकारें देश में सर्व शिक्षा अभियान और 'राईट टू एजुकेशन' जैसे अभियान चलाकर सभी को शिक्षित करने की दिशा में काम कर रही हैं, वहीं शिक्षा को सिर्फ कारोबार बना चुके कुछ सिंडीकेट चन्द रुपयों के लालच में उच्च शिक्षा की डिग्रियाँ हमारे देश के युवा शक्ति को उपलब्ध कराकर दीमक की तरह देश के भविष्य को खोखला कर रहे हैं। हम खुद बड़े बड़े संस्थानों में मोटी-मोटी फीस अदा करके अपने नौनिहालों को सभ्य समाज का प्रहरी बनाने के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगाने को तैयार हैं।

हमें हमेशा कुछ नया सीखने-सिखाने की दिशा में अग्रसर रहना चाहिए। ये इतना अथाह गहरा समन्दर है कि इसकी तह तक पहुँचकर ये कहना कि हम ब्रह्मज्ञानी हो गए हैं, सूर्य को दीपक दिखाने के समान ही होगा। भारतीय परंपरा में कहा गया है कि ज्ञान जितना बांटो, वो उतना ही बढता है, उन्नत होता हैं, हमारे ज्ञान का स्तर मूल्यवान होता है, लेकिन आज के वास्तविक जीवन में शिक्षा से मिलने वाले ज्ञानध्मूल्य से कहीं अधिक, मूल्य चुकाकर शिक्षा पाने की होड़ में सब लगे हुए हैं, ये रास्ता हमें और हमारे समाज को पतन की ओर ही लेकर जायेगा। इस व्यवस्था को बदलने के लिए हम सबको अग्रसर होना पड़ेगा तभी जाकर हम अपने देश के युवा संसाधन को मजबूत आधार प्रदान कर सकेंगे।

देश में इस वक़्त कई तकनीकी संस्थाओं में शिक्षण व्यवस्था में बदलाव की झलक दिखाई दे रही हैं या ये कहें कि उनमें राष्ट्रवाद की भावना प्रबल हो रही है, जिसके चलते नैतिक मूल्यों के साथ अपने जीवन को सँवारने की दिशा में सोचने का माहौल पैदा हुआ है जिसके लिए मैं व्यक्तिगत तौर पर मौजूदा सरकार को जिम्मेदार मानता हूँ, एक छोटा सा उदाहरण, आजादी के 67 सालों बाद हमें किसी ने यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि हमारे द्वारा फैलाये गए कचरे को जिसे हम हाथ भी लगाना नहीं चाहते हमारे-आपके बीच के लोग ही साफ़ करने का काम करते हैं। जबकि आज तक हम-सब को यही पढ़ाया और बताया गया कि शिक्षा का उद्देश्य मानव को सही अर्थों में संवेदनशील मनुष्य बनाना, उसमें आत्मनिर्भरता की भावना को उत्पन्न करना, देशवासियों का चरित्र निर्माण, मनुष्य को परम पुरुषार्थ की प्राप्ति कराना है लेकिन आज यह सब केवल पूर्ति के साधन बनकर रह गये हैं और नैतिक मूल्यों का निरंतर ह्रास किया जा रहा है।

आजकल के लोगों में श्रद्धा जैसी कोई भावना ही नहीं बची है। पाश्चात्य संस्कृति को आत्मसात करते हुए आज के युवाओं की जमात गुरुओं का आदर और माता-पिता का सम्मान नहीं करती है। विद्यार्थी वर्ग ही नहीं बल्कि पूरे समाज में अराजकता फैली हुई है। ये बात खुद पैदा हुई या कहीं हमारी शिक्षण व्यवस्था में कोई कमी है ?

आज के भौतिक युग में नैतिक शिक्षा बहुत ही जरूरी है। नैतिक शिक्षा ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है। नैतिक शिक्षा से ही राष्ट्र का सही अर्थों में निर्माण होता है। नैतिक गुणों के होने से ही मनुष्य संवेदशील बनता है एवं मूल्य स्थापित होते हैं। लोगों के सर्वांगीण विकास के साथ साथ कर्तव्यनिष्ठ नागरिकों का विकास होता है और राष्ट्र समृद्धि को प्राप्त करता है।
जय हिन्द !

गिरीश पंत
परियोजना प्रबंधक
सूचना प्रकोष्ठ

.....

हर पल, हर क्षण कहीं ना कहीं कोई ना कोई, कैंसर से जिन्दगी की जंग लड़ रहा है और इस घातक बीमारी से जीतने की कोशिश में लड़ाई हार रहा है। अमीर-गरीब, आम या खास, पढ़े लिखे या अनपढ़, चाहे कोई भी हो, ये प्राणघातक बीमारी बिना किसी भेदभाव के सबको अपना शिकार बनाती है। हॉलीवुड और बॉलीवुड के फ़िल्मी सितारे भी इस बीमारी से अछूते नहीं रह पाये हैं। आजकल हमें यह भी देखने को मिलता है कि ये मशहूर हस्तियाँ अक्सर कैंसर के बारे में खुलकर बात करतीं हैं, जैसे लीज़ा रे और मनीषा कोइराला ने कैंसर से अपनी लड़ाई के भयावह अनुभवों को साझा किया और जीवन के प्रति अपना आभार व्यक्त किया। बॉलीवुड की महान अदाकारा नरगिस दत्त का सन् 1981 में अग्नाशय कैंसर से निधन हुआ था। अभी हाल में ही गोआ के मुख्यमंत्री श्री मनोहर परिकर का भी इसी कैंसर की वजह से निधन हुआ।

अब यहाँ कुछ प्रश्न उत्पन्न होते हैं कि आखिरकार वो कौन से कारण हैं, जो कैंसर की उत्पत्ति के लिये जिम्मेदार होते हैं? क्या इसके लिये कोई ऐसा कारक उत्तरदायी है जो कैंसर को उत्पन्न करता है? क्या कैंसर कोई वंशानुगत रोग है? विभिन्न प्रकार के कैंसर के अलग-अलग जोखिम कारक होते हैं, जैसे सिगरेट, सिगार, तम्बाकू (गुटका और खैनी) क्रमशः फ़ेफ़ड़ों (lungs) और मुख (oral) के कैंसर के लिये जिम्मेदार हैं। दुर्भाग्यवश पिछ्ले कुछ सालों से पंजाब प्रान्त के संगरूर जिले के मालवा क्षेत्र मे कई व्यक्ति कैंसर से प्रभावित हुए हैं। वैज्ञानिक शोध के अनुसार कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग को इसका मुख्य कारण माना गया है।

आमतौर पर कैंसर शरीर के किसी भी अंग जैसे फेफड़े, प्रोस्टेट ग्रंथि (prostate gland), स्तन (breast), बड़ी आँत (colon) या रक्त में भी शुरू हो सकता है। सामान्यतः कैंसर तब शुरू होता है जब इन अंगों में कुछ असामान्य कोशिकाएं (cells) अनियंत्रित तरीके से बढ़ती हुई सामान्य कोशिकाओं का अतिक्रमण करने लगती है। कैंसर के अग्रिम चरण में इन अंगों की असामान्य कैंसर कोशिकाएं अपना प्रसार करते हुए शरीर के अन्य भागों में भी फैल सकती हैं (Figure 1)। उदाहरण के लिए, फेफड़े की कैंसर कोशिकाएं हड्डियों में पलायन कर सकती हैं और वहां की कोशिकाओ का अतिक्रमण कर अपना प्रसार कर सकती हैं, इस घटना को मेटास्टेसिस कहा जाता है ।

कैंसर की पहचान एक आनुवांशिक (genetic) बीमारी की है। लेकिन इन दोनो कथनों कि "कैंसर एक आनुवांशिक बीमारी है" और कैंसर

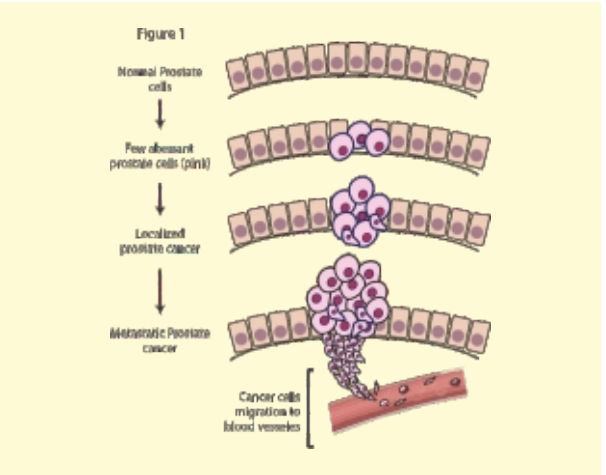

एक "वंशानुगत (hereditary) बीमारी है" से हमें भ्रमित नहीं होना चाहिए। इन दोनों कथनों में गहरा अंतर है क्योंकि वंशानुगत बीमारी में सन्तान को माता-पिता से असामान्य या दोषपूर्ण जीन (gene) मिलता है जबकि कुछ दुर्लभ उदाहरणों में कैंसर वंशानुगत भी हो सकता है, उदाहरण के लिए रेटिनोब्लास्टोमा (आंख का दुर्लभ ट्यूमर) कैन्सर में यह वंशानुगत होता है। यद्यपि, अधिकांश कैंसर वंशानुगत नहीं होते हैं, लेकिन कुछ कैंसर के लिए जैसे कि स्तन (breast) और बड़ी आँत (colon) कैंसर रोग के लिए वंशानुगत भी एक कारक हो सकता है । सभी कैंसर आनुवंशिक हैं, इसका अर्थ ये है कि वे एक या अधिक जीनों के कार्यो में विकृति होने के कारण उत्पन्न होते हैं ।

आणविक स्तर पर डीएनए, DNA (डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड), कोशिकाओं के वंशानुगत पदार्थ, में होने वाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप कैंसर उत्पन्न होता है। डीएनए का पूरा सेट, जिसमें एक जीव में मौजूद उसके सभी जीन शामिल हैं, जीनोम (genome) के रूप में जाना जाता है। प्रत्येक जीनोम में वे सभी महत्वपूर्ण जानकारी होती है जो उस जीव को बनाने और बनाए रखने के लिए आवश्यक होती है। उदाहरण के लिए, मानव के पूरे जीनोम की एक प्रति में 3 बिलियन (3 billion) से अधिक डीएनए बेस पेयर्स (base pairs) होते हैं और ये सभी एक कोशिका के नाभिक (nucleus) में मौजूद होते हैं। इसी तरह कैंसर कोशिकाओं के जीनोम के लिए "कैंसर जीनोम" शब्द का प्रयोग किया जाता है। जर्मन जीवविज्ञानी थियोडोर बोवेरी ने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में अनियंत्रित कोशिका वृद्धि में "कैंसर जीनोम" की अवधारणा की परिकल्पना की थी। बोवरी ने परिकल्पना की थी कि कोशिकीय विभाजन के समय गुणसूत्रों (chromosomes) मे होने वाले कुछ असामान्य परिवर्तनो के फ़लस्वरुप घातक ट्यूमर (tumor) उत्पन्न होते

हैं। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान ,कानपुर में जैविक विज्ञान और बायोइंजीनियरिंग विभाग (Dept.of BSBE) में हमारा शोध समूह कैंसर के जीनोम में उन आनुवंशिक या एपिजेनेटिक (epigenetic) परिवर्तनों की खोज करने में रुचि रखता है जो भारतीय कैंसर रोगियों मे कैंसर के होने और उसके फ़ैलने के लिये जिम्मेदार होते है। हमारा मुख्य प्रयास कैंडिडेट जीन्स (candidate genes) में होने वाले उत्परिवर्तन (mutations) को चिन्हित करना होता है जो हमें कैंसर रोग विज्ञान को समझने के लिए एक आणविक आधार प्रदान करता हैं, अकर्मण्य रोग तथा घातक कैंसर में अन्तर करने में सहायक होता है और संभावित उपचारों (potential therapies) के लिए विशिष्ट लक्ष्य (specific target) बताता है। हम यह भी जांच करते हैं कि ये आणविक स्तर पर होने वाले परिवर्तन कैंसर के मेटास्टेसिस और दवाओं के प्रति उनकी प्रतिरोधक क्षमता को कैसे प्रभावित करते हैं और यह खोज हमे कैंसर के प्रभावी उपचारों के विकास में मदद करती है, और इन जाचों से हमें आशातीत सफ़लता भी प्राप्त हुई है। मुख्य रूप से, हम तीन अलग-अलग प्रकार के कैंसर जैसे, प्रोस्टेट, स्तन और कोलोरेक्टल कैंसर पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं।

मॉलिक्यूलर ऑन्कोलॉजी प्रयोगशाला (Molecular Oncology Lab) में हम कैंसर-सेल लाइनों में उत्प्रेरक (oncogene) या ट्यूमर निरोधक (tumor suppressor) जीन के व्यवहार को समझने के लिए कई तकनीकों का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए कोशिका-आधारित जाँच और आणविक स्तर पर मार्गों को विच्छेदित करने के लिए आणविक तकनीकों का प्रयोग करके इन जीनों के कार्यात्मक महत्व और कैंसर सम्बन्धी दवाओं के प्रभाव का परीक्षण चूहों में जिनोग्राफ़्ट मॉडल (xenograft model) पर किया जाता है। जीएसवीएम (GSVM) मेडिकल कॉलेज, कानपुर; किंग जॉर्ज मेडिकल यूनिवर्सिटी (KGMU), लखनऊ और अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (AIIMS), नई दिल्ली के सहयोग से हमारे शोध समूह ने भारतीय पुरुषों में पहली बार प्रोस्टेट कैंसर में ज्ञात आनुवंशिक असामान्यताओं की जांच की। इस बहु-संस्थागत अध्ययन में, हमनें ~121 फॉर्मेलिन-फिक्स्ड पैराफिन एम्बेडेड प्रोस्टेट कैंसर नमूनों (specimens) की जांच जीन पुनर्व्यवस्था या संलयन (TMPRSS2-ERG और RAF-kinase), SPINK1 के स्तर में हुई वृद्धि, ट्यूमर सप्रेसर PTEN की क्षति, इम्यूनोहिस्टोकेमिस्ट्री (immunohistochemistry), आरएनए-इन-सीटू हाइब्रिडिज़ेशन (RNA- in situ hybridization) औरफ़्लोरोसेन्स इन सीटू हाइब्रिडाइजेसन (fluorescence in situ hybridization) तकनीकों से की। हमनें TMPRSS2-ERG को कुल ~49þ भारतीय प्रोस्टेट कैंसर रोगियों में पाया। इसके साथ ही हमनें 12% रोगियों में es SPINK1 के बढ़े हुए स्तर और 21% रोगियो में PTEN की क्षति को पाया। TMPRSS2-ERG पुनर्व्यवस्था वाले 30% रोगियो में PTEN की क्षति को देखा गया। इसके अलावा RAF जीन पुनर्व्यवस्था 5% रोगियो में पाया गया और वे सम्भवतः एफडीए (FDA) द्वारा अनुमोदित RAF निरोधात्मक दवाओं के प्रति सम्वेदनशीलता प्रदर्शित कर सकते हैं जो कि मुख्य रूप से त्वचा कैंसर (melanom) के उपचार के लिए उपयोग किया जाता है। (Prostate 2015; Trends in Cancer 2016), यह भारतीय पुरुषों में प्रोस्टेट कैंसर के आनुवंशिक विपथन के आणविक रूपरेखा पर पहली रिपोर्ट है। यह अध्ययन नि:सन्देह रुप से भारतीय प्रोस्टेट कैंसर रोगियों के निदान और चिकित्सीय निर्णय को प्रभावित करेगा। इसके बाद हाल ही में हमनें SPINK1 के रोगजनक स्तर तक बढ़े हुए होने में अंतर्निहित आणविक तंत्र की खोज में शामिल miRNAs (microRNAs) की भूमिका दर्शाई है, जो कि छोटे नॉन-कोडिंग आरएनए (non&coding RNA) हैं और जो जीन की पोस्ट-ट्रांसक्रिप्शनल (post-transcriptional) रूप से अभिव्यक्ति का नियंत्रण करते हैं। हमनें यह दर्शाया है कि miRNA&338-5p vkSj miRNA-421, SPINK1 mRNA ds 3*&UTR (अनट्रांसलेटेड रीजन) से जुड़ जाते है और इसके प्रोटीन एक्सप्रेशन का दमन कर देते हैं। हमारे कोशिका-आधारित जांच के परिणामों ने प्रदर्शित किया कि जब miRNA&338-5p/miRNA-421 dks SPINK1-पॉजिटिव प्रोस्टेट कैंसर की कोशिकाओं में डाला जाता है तो इन कोशिकाओं के कई ऑन्कोजेनिक गुणों का दमन करता है, और ये प्रोस्टेट कैंसर कोशिकाएं चूहों में छोटे ट्यूमर और कम मेटास्टेसिस का प्रदर्शन करती है (Figure 2) महत्वपूर्ण रूप से, प्रोस्टेट कैंसर के नमूनों में RNA&ISH का उपयोग करके प्राथमिक परिक्षण करने पर पता चला है कि SPINK1-पॉजिटिव रोगियों में से अधिकांश में EZH2 का स्तर बढ़ा हुआ है, जिससे हमें एपिजेनेटिक साइलेंसिंग (epigenetic silencing) में इसकी भूमिका का पता चलता है। हमनें अद्वितीय विनियामक मॉडल (regulatory model) के द्वारा SPINK1, miRNA&338-5p/miRNA-421, और EZH2 के बीच कार्यात्मक (functional) सम्बन्ध का प्रदर्शन किया, जिसमें हमनें दिखाया कि EZH2 के द्वारा उत्प्रेरित H3K27me3, SPINK1-पॉजिटिव प्रोस्टेट कैंसर रोगियो में इन दो miRNAs के ट्रांसक्रिप्शनल निरोध के साथ जुड़ा हुआ है (Clinical Cancer Research] 2019)। विशेष रूप से, हमारे निष्कर्षों से पता चलता है कि एपीजेनिटिक दवाओं जैसे कि

DNMT अवरोधकों और HDAC अवरोधकों का उपयोग करके miRNA-338-5p/miRNA-421 के स्तर को बहाल करने ij SPINK-1 द्वारा उत्पन्न कैसर का अभिनिषेध होता है। ये निष्कर्ष SPINK1-पॉजिटिव कैंसर रोगियों के इलाज के लिए संभावित चिकित्सीय रणनीतियों के विकास में एक मजबूत तर्क प्रदान करते हैं।

Figure 2

हम कोलोरेक्टल कैंसर (colorectal cancer) के विकृति विज्ञान को भी समझने की कोशिश कर रहे हैं, जो दुनिया भर में सबसे आम प्रकार के कैंसर में से एक है। कोलोरेक्टल कैंसर के रोगियों के लिए कई स्वीकृत लक्षित थेरेपी हैं, लेकिन 40% से अधिक मामलों में आशाजनक परिणाम नहीं मिले हैं, ये मुख्यतः जो KRAS और/या BRAF जीन्स में आनुवंशिक उत्परिवर्तन को सही करते हैं, जो अक्सर कोलोरेक्टल कैंसर में पाए जाते हैं। यहां, हमने इन उप-प्रकारों के लिए वैकल्पिक उपचारों की खोज की, और कोलोरेक्टल कैंसर के मामलों के अतिव्यापी उप-समूह में पाए जाने वाली एक विशेष असामान्यता पर ध्यान केंद्रित किया। प्रोस्टेट कैंसर की तरह, कोलोरेक्टल कैंसर वाले कई रोगियो मे भी SPINK1 की अभिव्यक्ति अधिक होती हैं, यह जीन एक ऐसे प्रोटीन को उत्पन्न करता है जिसके कई कार्यों में निष्क्रिय कोशिका एपोप्टोसिस रोक देना भी शामिल है। हमनें पता लगाया कि वास्तव में SPINK1 कोलोरेक्टल कैंसर के क्रियाविधि से कैसे जुड़ा हो सकता है। SPINK1 के उच्च अंतर्जात स्तर के साथ कोलोरेक्टल कैंसर कोशिकाओं में SPINK1 के कार्यात्मक महत्व के लिए खोज करते हुए, हमनें पाया कि इन कोलोरेक्टल कैंसर कोशिकाओं में SPINK1 की अभिव्यक्ति को अवरुद्ध करने से कोशिका-प्रसार (cell proliferation) कम हो जाता है, जबकि इसकी अभिव्यक्ति को बढ़ा देने पर इसका विपरीत परिणाम मिलता है । हमनें यह भी पता लगाया, कि SPINK1 मेटालोथायोनिन (metallothioneis) प्रोटीन की अभिव्यक्ति को कम करने का कार्य कर सकता है, ये प्रोटीन कोशिकीय जिंक पोषण तथा समैस्थिकथा (homeostasis) को सामान्य कार्य के लिए आवश्यक संतुलन प्रदान करती है और कैंसर की कोशिकाओं की कीमोथेरेपी (chemotherapy) या कैंसर दवाओं के प्रति संवेदनशीलता को बढ़ा सकती हैं। SPINK1 जीन को लक्षित करने के दोहरे प्रभाव होते है, पहला SPINK1 का स्तर कम होना और मेटालोथायोनिन की अभिव्यक्ति का बढना जिससे कोशिकाएँ कैंसर दवाओं के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाती हैं। (Oncogenesis, 2015).

स्तन कैंसर में, हमनें AGTR1 जीन में एकल-न्यूक्लियोटाइड बहुरूपताओं (Single nucleotide polymorphisms, SNP) के महत्व को दिखाया है। एसएनपी जीनोम में एक विशिष्ट स्थान पर मौजूद एक एकल न्यूक्लियोटाइड का प्रतिस्थापन है, जहां प्रत्येक भिन्नता आमतौर पर आबादी के भीतर काफी हद तक मौजूद होती है। हमनें उत्तरी भारत के स्तन कैंसर के रोगियों में दो एसएनपी अर्थात् AGTR1 (ए 1166 सी, A1166C) और ACE (आई/डी, I/D) में बहुरूपता पायी। हमनें दिखाया है कि ACE (I/D) के डीडी जीनोटाइप (DD genotype)/D एलील (D allele) वाली महिलाओं और AGTR1 (A1166C) के AC या CC जीनोटाइप (AC or CC genotype)/ C एलील (C allele) वाली महिलाओं में आमतौर पर स्तन कैंसर विकसित होने का अधिक जोखिम होता है। इसके अलावा, ये निष्कर्ष उन महिलाओं के लिए इन बहुरूपताओं के आधार पर एक आनुवंशिक जाँच विकसित करने के महत्व को सामने लाते हैं जिनमें स्तन कैंसर के विकास का जोखिम सबसे अधिक होता है।

चूंकि इस वर्तमान जीनोमिक्स के युग मे व्यक्तिगत ऑन्कोमेडिसिन (oncomedicine) के जबरदस्त दावे किये जा रहे है, इसलिए वर्तमान में हम भारत के प्रोस्टेट कैंसर रोगियों के "उत्परिवर्ती परिदृश्य (mutational landscape)" की खोज में प्रयास कर रहे हैं। महत्वपूर्ण रूप से, हाई-थ्रूपुट सिक्वेंसिंग तकनीकों (high-throughput sequencing techniqes और कैंसर जीनोमिक्स के क्षेत्र में हाल में अद्वितीय प्रगति "ड्रगेबल" (druggable) आणविक लक्ष्यों की खोज को उत्प्रेरित कर रही है जिसमें ऑन्कोजेन्स, सिग्नलिंग कैस्केड (signaling cascade) में शामिल प्रोटीन क्रम (protein pathways) और कैंसर के रोगजनन में शामिल नेटवर्क और इन लक्ष्यों के खिलाफ चिकित्सा के विकास के मार्ग दिखाये गये है। इसलिए, रोगियों से प्राप्त ट्यूमर के कैंसर जीनोम या प्रतिलेख (cancer genome or transcriptome) को अनुक्रमित करके आणविक विपथन (molecular aberrations) या उत्परिवर्तन को समझना आवश्यक है। कैंसर के क्षेत्र

में इन प्रगतियो का पहले से ही कैंसर रोगियों की नैदानिक देखभाल और उपचार पर प्रभाव पडता है और भविष्य में वह दिन अब बहुत दूर नहीं, जब रोगी के ट्यूमर नमूनों की नैदानिक सिक्वेंसिंग (clinical sequencing) को भारत में मानक नैदानिक अभ्यास के रूप में अपनाया जायेगा।

बुशरा अतीक
एसोशिएट प्रोफेसर
जीवविज्ञान एवं जैविक अभियांत्रिकी

.....

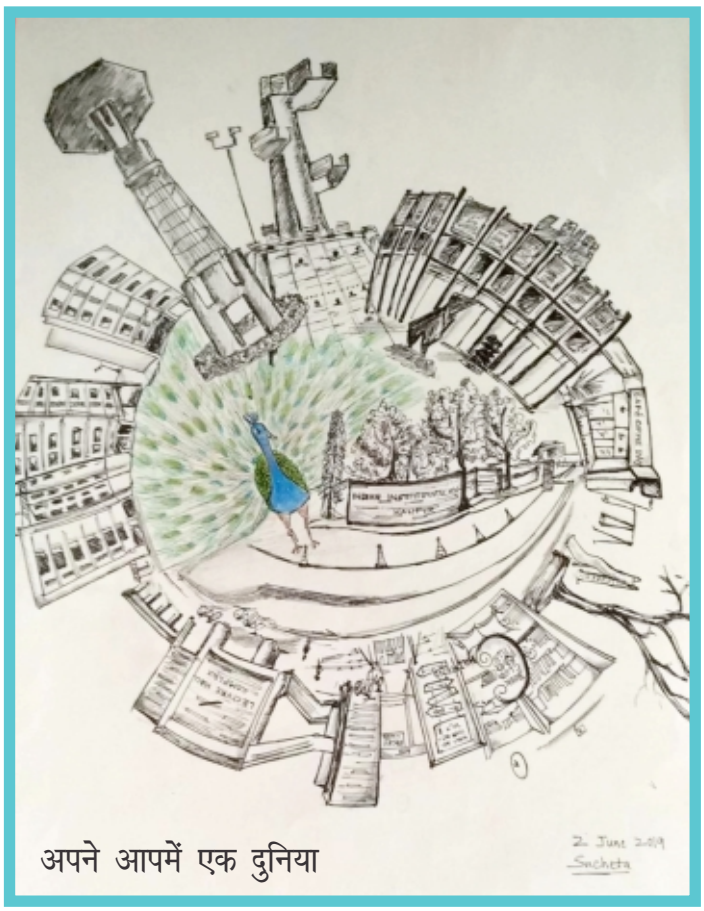

अपने आपमें एक दुनिया

सुचित्रा हेगड़े
परिसरवासी

पाती

आदरणीय प्रोफेसर बालानी जी, डॉ. वेद प्रकाश जी, सुनीता जी'अंतस' का नया अंक (अंक-15) समय पर मिल गया था, हालाँकि कुछ देर से पत्र लिख रहा हूँ। इतने सुंदर अंक के लिए आपकी पूरी टीम को बहुत बहुत बधाई।

प्रोफेसर शर्मा का संस्मरण 'भारतीय तकनीक संस्थान के झूठे-सच्चे अनुभव' इतना रोचक था कि एक साँस में पढ़ गया। पता चला कि वह रिटायर हो रहे हैं। यही लगा कि समय कितनी जल्दी बीतता चला जाता है।

'गुरु दक्षिणा' और 'रुबरु' जैसे स्तंभ पत्रिका की पहचान हैं। हर बार नयी जानकारियाँ मिलतीं हैं। डॉ. अर्क वर्मा का लेख चिंतन के कई सारे सूत्र देता है। अन्य रचनाएं भी अच्छी हैं।

किंचित संकोच के साथ सुझाव यह कि पत्रिका में आई। आई. टी. कानपुर और उसकी रचनात्मकता से संबंधित रचनाएं ज़्यादा से ज़्यादा दें। सामान्य रचनाएं तो हर तरह के माध्यम में बहुलता से उपलब्ध हैं हीं।

पिछले वर्ष अक्टूबर में सुविख्यात पर्यावरणविद और आई. आई. टी.कानपुर के पूर्व प्रोफेसर डॉ.जी.डी. अग्रवाल का दुखद निधन हो गया। मैं सोच रहा था कि शायद पत्रिका उन पर कुछ सामग्री देगी।

पर्यावरण को लेकर उनके महत्वपूर्ण अवदानों और संघर्षों के बारे में हम सब को जानना चाहिए, तभी हम उस महान व्यक्तित्व की उँचाई समझ सकेंगे।
आशा करता हूँ कि अगामी अंकों मे उन पर सामग्री प्रकाशित होगी।

सादर,

संजीव गुप्त
(पूर्व छात्र, एम.टेक.)

आदरणीय सर,
सुझाव हेतु धन्यवाद।
अंतस के 11वें अंक में प्रो. मुकेश शर्मा, सिविल अभियांत्रिकी का "वायु प्रदूषण" पर लेख प्रकाशित किया गया था।

राजभाषा प्रकोष्ठ

भारतीय संस्थान प्रौद्योगिकी कानपुर की साहित्यिक पत्रिका अंतस के इस अंक का सामयिक विषय मूल्य शिक्षा है, इस विषय को लेकर ही संस्थान के हीरक जयंती के शुभ अवसर पर, संस्थान महिला मंडल एवं संकाय क्लब के सौजन्य से, एक नाटक का मंचन 15 मार्च, 2019 को किया गया, जिसमें संस्थान के शिक्षक, परिजन, कर्मचारीगण तथा छात्रों द्वारा भाग लिया गया। नाट्य प्रस्तुति ने सबके मन को छूकर झकझोर दिया और अनेक ज्वलंत सामयिक विषयों पर सोचने एवं समाधान ढूँढ़ने के लिए विवश कर दिया।

डॉ शंकर शेष द्वारा रचित एक और द्रोणाचार्य उनके सबसे लोकप्रिय नाटकों में से एक है। इस नाटक में महाभारत काल के महान द्रोणाचार्य के व्यक्तित्व, कर्म, अन्तर्द्वन्द एवं तत्कालीन परिस्थितियों की तुलना वर्तमान समय के शिक्षक- गुरु- शिष्य परंपराएं, कार्यशैली एवं वातावरण से की गयी है।

यह नाटक वर्तमान शिक्षा- जगत में व्याप्त विसंगतियों का सशक्त चित्रण करता है। आज के शिक्षक पर आदर्श गुरु-शिष्य परंपरा का निर्वहन व्यवस्थागत बाध्यताएं एवं सुविधाभोगी जीवन की लोलुपता जैसे अनेक दबाव हैं। परिणामस्वरूप वह अपने कर्तव्यों का समुचित निर्वहन करने में असमर्थ है। अत: ऐसी भावी पीढ़ी के निर्माण में उसकी भागीदारी हो रही है जो दिशाहीन तथा कर्तव्यविहीन है एवं मानवता के आदर्शों से दूर होती जा रही है।

इस नाटक के द्वारा लेखक ने वर्तमान शिक्षक की तुलना कौरवों और पांडवों के गुरु द्रोणाचार्य से की है जिन्होंने आदर्श गुरु-शिष्य परंपरा पर कुठाराघात करते हुए शिक्षा के व्यवसायीकरण की ओर प्रथम कदम बढ़ाया था। उन्होंने अपनी दरिद्रता तथा तत्कालीन परिस्थितियों के वशीभूत होकर गुरुकुल परंपरा को तोड़ते हुए एक प्रतिभाशाली किन्तु शक्तिहीन गुरु के रूप में कार्य किया। उनकी इसी दिशाहीन एवं पक्षपातपूर्ण शिक्षा के कारण एक ऐसी भावी पीढ़ी का निर्माण हुआ जो मानवता के गुणों से विहीन थी और परिणामस्वरूप महाभारत जैसा विध्वंसकारी युद्ध हुआ।

डॉ ओंकार दीक्षित के निर्देशन में, इस कालजयी नाटक ने वर्तमान समय की उच्च शिक्षा व्यवस्था पर अनेक प्रश्नों को जन्म दिया है, और ज्वलंत समस्याओं के मंथन हेतु उकसाया है तथा गहन चिंतन के लिए बाध्य किया है।

नोट – संपूर्ण नाटक youtube पर देखने हेतु क्लिक करें ——— https://youtu.be/l9BsJsAEy1U

एक और द्रोणाचार्य (नाटक) का मंचन परिसर के संकाय, कर्मचारी एवं छात्रों द्वारा

अखिल भारतीय कवि सम्मेलन का आयोजन

द्रुपद गायन पं. उदय भवालकर

लज्जा और ग्लानि (विचारात्मक निबन्ध)

हम जिन लोगों के बीच रहते हैं अपने विषय में उनकी धारणा का जितना ही अधिक ध्यान रखते हैं उतना ही अधिक प्रतिबन्ध अपने आचरण पर रखते हैं। जो हमारी बुराई, मूर्खता या तुच्छता के प्रमाण पा चुके रहते हैं, उनके सामने हम उसी धड़ाके के साथ नहीं जाते जिस धड़ाके के साथ औरों के सामने जाते हैं। यहाँ तक नहीं, जिन्हें इस प्रकार का प्रमाण नहीं भी मिला रहता है, उनके आगे भी कोई काम करते हुए यह सोचकर कुछ आगा-पीछा होता है कि कहीं इस प्रकार का प्रमाण उन्हें मिल न रहा हो। दूसरों के चित्त में अपने विषय में बुरी या तुच्छ धारणा होने के निश्चय या आशंका मात्र से वृत्तियों का जो संकोच होता है-उनकी स्वच्छन्दता के विघाट का जो अनुभव होता है-उसे लज्जा कहते हैं। इस मनोवेग के मारे लोग सिर ऊँचा नहीं करते, मुँह नहीं दिखाते, सामने नहीं आते, साफ-साफ कहते नहीं, और भी न जाने क्या-क्या नहीं करते। हम बुरे न समझे जायें यह स्थायी भावना जिसमें जितनी ही अधिक होगी, वह उतना ही लज्जाशील होगा। कोई बुरा कहे चाहे भला इसकी परवा न करके जो काम किया करते हैं वे ही निर्लज्ज कहलाते हैं।

जिस समाज में हम कोई बुराई करते हैं, जिस समाज में हम अपनी मूर्खता, धृष्टता आदि का प्रमाण दे चुके रहते हैं, उसके अंग होने का स्वत्व हम जता नहीं सकते, अतः उसके सामने अपनी सजीवता के लक्षणों को उपस्थित करते या रखते नहीं बनता-यह प्रकट करते नहीं बनता कि हम भी इस संसार में हैं। जिसके साथ हमने कोई बुराई की होती है उसे देखते ही हमारी क्या दशा होती है? हमारी चेष्टाएँ मन्द पड़ जाती हैं। हमारे ऊपर घड़ों पानी पड़ जाता है, हम गड़ जाते हैं या चाहते हैं कि धरती फट जाती और हम उसमें समा जाते। सारांश यह कि यदि हम कुछ देर के लिए मर नहीं जाते तो कम से कम अपने जीने के प्रमाण अवश्य समेट लेते हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे यह स्पष्ट हो गया कि लज्जा का कारण अपनी बुराई, त्रुटि या दोष हमारा अपना निश्चय नहीं, दूसरे के निश्चय का निश्चय या अनुमान है, जो हम बिना किसी प्रकार का प्रमाण पाये केवल अपन आचरण या परिस्थिति विशेष पर दृष्टि रखकर ही कभी-कभी कर लिया करते हैं। हम अपने को दोषी समझें यह आवश्यक नहीं, दूसरे हमें दोषी या बुरा समझें यह भी आवश्यक नहीं, आवश्यक है हमारा यह समझना कि दूसरा हमें दोषी या बुरा समझता है या समझता होगा। जो आचरण लोगों को बुरा लगा करता है, जिस अवस्था का लोग उपहास किया करते हैं, जिस बात से लोग

विरासत

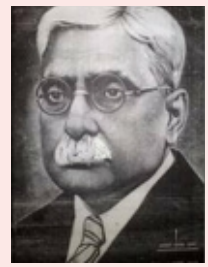

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म बस्ती जिले के अगोना नामक गांव में हुआ था। पिता पं. चंद्रबली शुक्ल की नियुक्ति सदर कानूनगो के पद पर मिर्जापुर में हुई तो समस्त परिवार वहीं आकर रहने लगा। जिस समय शुक्ल जी की अवस्था नौ वर्ष की थी, उनकी माता का देहान्त हो गया। मातृ सुख के अभाव के साथ-साथ विमाता से मिलने वाले दुःख ने उनके व्यक्तित्व को अल्पायु में ही परिपक्व बना दिया।

घृणा किया करते हैं यदि हम समझते हैं कि लज्जित होने के लिए लोगों के देखने में वह आचरण हमसे हो गया, उस अवस्था में हम पड़ गये या वह बात हमसे बन पड़ी हम लज्जित होने के लिए इनका आसरा न देखेंगे कि जिन लोगों के सामने ऐसी बात हुई है वे निन्दा करें, उपहास करें या छिः – छिः करें। वे निन्दा करें, उपहास करें या न करें, घृणा प्रकट करें या न करें पर हम समझते हैं कि मधुशाला उनके पास है, वे उसका उपयोग करें या न करें। यह अवश्य है कि उपयोग होने पर हमारी लज्जा का वेग या भार बहुत बढ़ जाता है, पर कभी-कभी इसका उल्टा भी होता है। जिसके साथ हमसे कोई भारी बुराई होती है वह यदि दस आदमियों के सामने मिलने पर मौन रहे, हमारा गुणानुवाद करने लगे, हमसे प्रेम जताने लगे या हमारा उपकार करने लगे, तो शायद हम अपने डूबने के लिए चुल्लू भर पानी ढूँढ़ने लगेंगे। वन से लौटने पर रामचन्द्र कैकेयी से मिले और 'रामहिं मिलत कैकेयी हृदय बहुत सकुचानि।' पर जब लक्ष्मण कैकेयी कहँ पुनि-पुनि मिले तो वह लज्जा से धँस गयी होगी। चित्रकूट में जब राम पहले कैकेयी से मिले होंगे तब उसकी क्या दशा हुई होगी?

निन्दा का भय लज्जा नहीं है, भय ही है और कई बातों का जिसमें लज्जा भी एक है। हमें निन्दा का भय है; इसका मतलब है कि हमें उसके परिणामों का भय है-अपने कुढ़ने, दुखी होने, लज्जित होने, हानि सहने इत्यादि का भय है।

विशुद्ध लज्जा अपने विषय में दूसरे की ही भावना पर दृष्टि रखने से होती है। अपनी बुराई, मूर्खता, तुच्छता इत्यादि का एकान्त अनुभव करने से वृत्तियों में जो शैथिल्य आता है उसे ग्लानि कहते हैं। इसे अधिकतर उन लोगों को भोगना पड़ता है, जिनका अन्तःकरण सत्वप्रधान होता है, जिनके संस्कार सात्विक होते हैं, जिनके भाव कोमल और उदार होते हैं, जिनका हृदय कठोर होता है, जिनकी वृत्ति

क्रूर होती है, जो सिर से पैर तक स्वार्थ में निमग्न होते हैं, उन्हें सहने के लिए संसार में इतनी बाधाएँ, इतनी कठिनाइयाँ, इतने कष्ट होते हैं कि ऊपर से और इसकी भी न उतनी जरूरत रहती है, न जगह। मन में ग्लानि आने के लिए यह आवश्यक नहीं कि जो हमारी बुराई, मूर्खता, तुच्छता आदि से परिचित हों, या परिचित समझे जाते हों, उनका सामना हो । हम अपना मुँह न दिखाकर लज्जा से बच सकते हैं, पर ग्लानि से नहीं। कोठरी में बन्द, चारपाई पर पड़े-पड़े लिहाफ के नीचे भी लोग ग्लानि से गल सकते हैं। चित्रकूट में भरत-राम मिलाप के स्थान पर जब जनक के आने का समाचार पहुँचा तब सुनत जनक-आगमन सब हरखेउ अवध समाज। पर गरइगलानि कुटिल कैकेयी।

ग्लानि में अपनी बुराई, तुच्छता आदि के अनुभव से जो संताप होता है वह अकेले में भी होता है और दस आदमियों के सामने प्रकट भी किया जाता है। ग्लानि अन्तकरण की शुद्धि का एक विधान है। उससे इसके उद्‌गार में अपने दोष , अपराध, तुच्छता, बुराई इत्यादि का लोग दुख से या सुख के कथन से भी अनुभव करते हैं- उनमें दुराव या छिपाव की प्रवृत्ति नहीं रहती है। अपने दोष का अनुभव, अपने अपराध का स्वीकार, आन्तरिक अस्वस्थता का उपचार तथा सच्चे सुधार का द्वार है। हम बुरे हैं जब तक यह न समझेंगे तब तक अच्छे नहीं हो सकते। हम बुरे हैं दूसरों के कान में पड़ते ही इसका अर्थ उलट जाता है।

दूसरों को हम अच्छे नहीं लगते, यह समझकर हम लज्जित होते हैं। अतः औरों को अच्छी न लगने वाली अपनी बातों को केवल उनकी दृष्टि से दूर रखकर ही बहुत से लोग न लज्जित होते हैं, न निर्लज्ज कहलाते हैं। दूसरों के हृदय में अज्ञान की प्रतिष्ठा करके वे उसकी शरण में जाते हैं। पर अज्ञान, चाहे अपना हो चाहे पराया, सब दिन रक्षा नहीं कर सकता। बलि-पशु होकर ही हम उसके आश्रय में पलते हैं। जीवन के किसी अंग की यदि वह रक्षा करता है तो सर्वांग भक्षण के लिए। अज्ञान अन्धकार स्वरूप है। दीया बुझाकर भागने वाला यदि समझता है कि दूसरे उसे देख नहीं सकते, तो उसे यह भी समझ रखना चाहिए कि वह ठोकर खाकर गिर भी सकता है।

कोई बात ऐसी है जिसके प्रकट हो जाने के कारण हम दूसरों को अच्छे नहीं लगते हैं यह जानकर अपने को और प्रकट होने पर अच्छे नहीं लगेंगे, यह समझकर उस बात को, थोड़े-बहुत यत्न से उसके दृष्टिपथ से दूर करके भी जब हम समय पर अपना बचाव कर सकते हैं, यही नहीं, अपने व्यवधान-कौशल पर विश्वास कर सदा बचते चले जाने की आशा तक-चाहे झूठी ही क्यों न हो-कर सकते हैं, तब हमारा केवल यह जानना या समझना सदा सुधार की इच्छा ही उत्पन्न करेगा। कहा जा सकता है? दूसरों का भय हमें भगा सकता हैं, पर अपने से नहीं। जब अपने को हम अच्छे न लगेंगे तब सिवा इसके कि हम अच्छे हों या अच्छे होने की आशा करें, आत्मग्लानि से बचने का और कोई दूसरा उपाय न रहेगा। पर जिसके अन्तकरण में अच्छे संस्कारों का बीज रहता है, ग्लानि उन्हीं को होती है।

संकल्प या प्रवृत्ति होने पर बुराई से बचाने वाले तीन मनोविकार हैं-सात्विक वृत्ति वालों के लिए ग्लानि, राजसी वृत्ति वालों के लिए लज्जा और तामसी वृत्ति वालों के लिए भय। जिन्हें अपने किये पर ग्लानि नहीं हो सकती वे लोक-लज्जा से, जिनमें लोक-लज्जा का लेश भी नहीं रहता वे भय से, बहुत से कामों को करते हुए हिचकते हैं। प्रायः कहा जाता है कि बहुत से लोग इच्छा रखते हुए भी बुरे काम लज्जा के मारे नहीं करते। पर लज्जा का अनुभव एक प्रकार के दुख का ही अनुभव है, अत यह नहीं कहा जा सकता कि कर्म न करने पर भी अपनी इच्छा मात्र पर उन्हें दुख होता है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो वे इच्छा रखते ही क्यों? सच पूछिये तो उन्हें उस दुख की आशंका मात्र रहती है जो लोगों के धिक्कार, बुरी धारणा आदि से उन्हें होगा। वास्तव में उन्हें लज्जा की आशंका रहती है, इस बात का डर रहता है कि कहीं लज्जित न होना पड़े।

लज्जा का अनुभव तो तभी होगा जब वे कुकर्म की ओर इतने अग्रसर हो चुके रहेंगे कि यह समझ करें कि लोगों के मन में बुरी धारणा हो गयी होगी। उस समय उनका पैर आगे नहीं बढ़ेगा।

आशंका अनिश्चयात्मक वृत्ति है। इससे लज्जा की ही हो सकती है, जिसका संबंध दूसरों की धारणा से होता है। ग्लानि की आशंका नहीं हो सकती। क्योंकि उसका संबंध अपने से कहीं बाहर की बुरी धारणा से तो नहीं होता, अपनी ही बुरी धारणा से होता है जिसमें अनिश्चय का भाव नहीं रह सकता। जिससे बुराई की जितनी ही अधिकतम सम्भावना होती है उसे रोकने का उतने ही पहले से उपाय किया जाता है। जिन्हें अपने किये पर ग्लानि हो सकती है उनके लिए उतने पहले से प्रतिबन्ध की आवश्यकता नहीं होती जितने पहले से उनके लिए होती है, जो केवल यही समझकर दुखी होते हैं कि लोग बुरा समझते हैं

यह समझकर नहीं कि हम बुरे हैं। जो निपट निर्लज्ज होते हैं, जो दूसरों की बुरी धारणा की भी तब तक परवा नहीं करते जब तक उससे किसी उग्र फल की आशंका नहीं होती, उनके कर्म प्राय: इतने बुरे, इतने असह्य हुआ करते हैं कि दूसरे उन्हें बुरा समझकर ही नहीं रह जाते, छि छि करके ही संतोष नहीं कर लेते, बल्कि मरम्मत करने के लिए भी तैयार हो जाते हैं, जिससे उन्हें कभी भयभीत होना पड़ता है, कभी सशंक।

मनुष्य लोकबद्ध प्राणी है, इससे वह अपने को उनके कर्मों के गुण-दोष का भी भागी समझता है जिनसे उनका संबंध होता है, जिनके साथ में वह देखा जाता है। पुत्र की अयोग्यता और दुराचार, भाई के दुर्गुण और असभ्य व्यवहार आदि का ध्यान करके भी दस आदमियों के सामने सिर नीचा होता है। यदि हमारा साथी हमारे सामने किसी तीसरे आदमी से बातचीत करने में भारी मूर्खता का प्रमाण देता है, भद्दी और ग्राम्य भाषा का प्रयोग करता है, तो हमें भी लज्जा आती है। मैंने कुत्ते के कई शौकीनों को अपने कुत्ते की बदतमीजी पर शरमाते देखा है। जिसे लोग कुमार्गी जानते हैं, उसके साथ यदि हम कभी देवमंदिर के मार्ग पर भी देखे जाते हैं तो सिर झुका लेते हैं या बगलें झाँकते हैं। बात यह है कि जिसके साथ हम देखे जाते हैं, उसका हमारा कितनी बातों में कहाँ तक साथ है, दूसरों को इसके अनुमान की पूरी स्वच्छन्दता रहती है, उनकी कल्पना की कोई सीमा हम तत्काल बाँध नहीं सकते।

किसी बुरे प्रसंग में यदि निमित्त रूप से भी हमारा नाम आ जाता है तो हमें लज्जा होती है-चाहे ऐसा हमारी जानकारी में हुआ हो, चाहे अनजान में। यदि बिना हमें जताये हमारे पक्ष में कोई कुचक्र रचा जाय तो उसका वृत्तान्त फैलने पर हमें लज्जा क्या ग्लानि तक हो सकती है। लज्जा का होना तो ठीक है क्योंकि वह दूसरों की धारणा के कारण होती है, अपनी धारणा के कारण नहीं। पर ग्लानि कैसे होती है, हम बुरे या तुच्छ हैं, यह धारणा कहाँ से आती है, यही देखना है। अपमान होने पर यदि क्रोध के लिए स्थान हुआ हो तो क्रोध का, नहीं तो अपनी तुच्छता का अनुभव होता है। दूसरों के चित्त में हमारे प्रति जो प्रेम या प्रतिष्ठा का भाव रहता है, उसका ह्रास किसी कुचक्र के साथ अपना नाममात्र का संबंध समझकर भी, हम समझे बिना नहीं रह सकते। जब स्थिति ऐसी होती है कि इस ह्रास का न समाधान द्वारा निराकरण कर सकते हैं, न क्रोध द्वारा प्रतिकार तो, सिवा इसके कि हम अपनी हीनता का अनुभव करें, और कर ही क्या सकते हैं? भरत को इसी दशा में पाकर राम ने उन्हें समाझाया था कि-

तात जाय जनि करहु गलानी।
ईस अधीन जीव-गति जानी।।
तीनि-काल त्रिभुवन मत मोरे।
पुन्य सलोक तात तर तोरे।।
उर आनत तुम पर कुटिलाई
जाइ लोक परलोक नसाई।।

जिसने इतनी बुराई की वह मेरी माता है, इस भावना से जो लज्जा भरत को थी उसे दूर करने के लिए ही आगे का वचन है-

दोषि देहिं जननिहिं जड़ तेई।
जिन गुरु-साधु-सभा नहिं सेई।।

इस प्रकार दोष देने वाले से दोषाद् भावना द्वारा अनधिकार का आरोप करके माता के दोष का परिहार किया गया है।

उत्तम कोटि के मनुष्यों को अपने दुष्कर्म पर ग्लानि होती है और मध्यम कोटि के मनुष्यों को अपने दुष्कर्म के किसी कड़ुए फल पर। दुष्कर्म के अनेक अप्रिय फलों में से एक अपमान है, जिसे सहकर अपनी तुच्छता का अनुभव किये बिना लोग प्राय: नहीं रहते। जिन्हें अपनी किसी कर्म की बुराई का ध्यान आप से आप नहीं होता उन्हें ध्यान कराने का श्रम उसकी बुराई का विशेष अनुभव कराने वाले, अपनी बुराई का सब ध्यान कराने का श्रम उसकी बुराई का विशेष अनुभव कराने वाले, अपनी बुराई का सब ध्यान, अपने हाथ का सब धन्धा, छोड़कर उठाते हैं। इस श्रम से दूसरों के लिए उनकी बुराई का फल पैदा किया जाता है। उसकी नीरसता और कटुता कभी-कभी अत्यन्त ग्लानिकारिणी होती है आँख खुलने पर जो आँख खोलने वालों को देख सकें, उनकी आँख की दुरुस्ती में बहुत कसर समझनी चाहिए। अपमान या हानि की ही ग्लानि जो उस अपमान या हानि ही तक ध्यान को ले जाए-उसके कारण तक न बढ़ाए-वह बुराई के मार्ग पर चल चुकने वालों का थोड़ी देर के लिए पैर थाम या बल तोड़ सकती है, पर उसका मुँह दूसरी ओर मोड़ नहीं सकती। अपमान का जो दुख केवल इन शब्दों में व्यक्त किया जाता है कि 'हा! हमारी यह गति हुई?' उससे अपमान करने वालों का काम तो हो जाता है पर दुख करने वालों का कोई मतलब नहीं निकलता। जो ग्लानि हमसे यह कहलाए कि 'यदि हमनें ऐसा न किया होता तो हमारी यह गति क्यों

होती?' यही पश्चाताप की ग्लानि है जिससे हमारा हृदय पिघल कर किसी नए साँचे में ढ़लने के योग्य हो सकता है। अतः कोई ऐसी बुराई करके जिससे चार आदमियों को कष्ट पहुँचता हो, हम यह समझने में कि 'हमने बुरा किया' जितनी ही जल्दी करते हैं उतने ही मजे से रहते हैं क्योंकि बहुधा ऐसा है कि जिन्हें कष्ट पहुँचा रहता है वे हमारी इस समझ का पता पाकर संतुष्ट हो जाते हैं। अपनी किसी बुराई को बन्ध्या मानकर मन का खटका छुड़ाने वाले धोखा खाते हैं।

अपमान से जो ग्लानि होती है वह दो भावों के आधार पर-हम ऐसे तुच्छ हैं और हम ऐसे बुरे हैं इन दोनों भावों को कभी-कभी लोग बड़ी फुरती और सफाई से रोकते हैं। अपनी तुच्छता का भाव अधिकांश में अपनी असामर्थ्य और दूसरे के सामर्थ्य का भाव है। हम इतने असमर्थ हैं कि दूसरे हमारा अपमान कर सकते हैं, इस भाव से निवृत्ति तो लोग चट अपनी सामर्थ्य का परिचय देकर अपमान करने वाले का अपमान करके—कर लेते हैं। रहा अपने दोष या बुराई का भाव, उससे छुटकारा लोग दोष देने वालों में दोष ढूँढकर कर लेते हैं। इस प्रकार अपनी सामर्थ्य और दूसरे के दोष की भावना मन में भरकर वे अपनी तुच्छता और बुराई के अनुभव के लिए कोई कोना खाली ही नहीं छोड़ते। ऐसे लोग चाहे लाख बुराई करें, एक की दस सुनाने को सदा तैयार रहते हैं। अपने को ऐसा ही कल्पित करके तुलसीदास जी कहते हैं-

जानत हूँ निज पाप जलधि जिय,
जल-सीकर सम सुनत लरौं।
रज सम पर अवगुन सुमेरु करि,
गुन गिरि सम रज तें निदरौं।।

अकारण अपमान पर जो ग्लानि होती है वह अपनी तुच्छता, सामर्थ्यहीनता पर ही होती है। लोक-मर्यादा की दृष्टि से हमको इतना सामर्थ्य सम्पादन करना चाहिए कि दूसरे अकारण हमारा अपमान करने का साहस न कर सकें। समाज में रहकर मान-मर्यादा का भाव हम छोड़ नहीं सकते। अतः इस सामर्थ्य का अभाव हमें खटक सकता है। उसकी हमें ग्लानि हो सकती है। जो संसार त्यागी या आत्म-त्यागी हैं उनका विगतमान होना तो बहुत ठीक है, पर लोक व्यवहार की दृष्टि से अनिष्ट से बचने-बचाने के लिए इष्ट यही है कि हम दुष्टों का हाथ थामें और धृष्टों का मुँह-उनकी वन्दना करके हम पार नहीं पा सकते। इधर हम हाथ जोड़ेंगे, उधर वे हाथ छोड़ेंगे। असामर्थ्य हमें क्षमा या सहनशीलता का श्रेय भी पूरा-पूरा नहीं प्राप्त करने देगी।

मान लीजिए कि एक ओर से हमारे गुरुजी और दूसरी ओर से एक दण्डधारी दुष्ट, दोनों आते दिखाई पड़ें। ऐसी अवस्था में पहले हमें उस दुष्ट का सत्कार करके तब गुरु जी को दण्डवत करना चाहिए। पहले दुष्ट द्वारा होने वाले अनिष्ट का निवारण कर्तव्य है, फिर उस आनन्द का अनुभव जो गुरुजी के चरण-स्पर्श से होगा। यदि पहले गुरुजी को साष्टांग दण्डवत करने लगेंगे तो बहुत संभव है कि वह दुष्ट हमारे अंगों को फिर उठाने लायक ही न रखे। यदि हममें सामर्थ्य नहीं है तो हमें बिना गुरुजी का प्रमाण दण्डवत किये ही भागना पड़ेगा जिसकी शायद हमें बहुत दिनों तक ग्लानि रहे।

लज्जा का हल्का रूप संकोच है जो किसी काम को करने के पहले ही होता है। कर्म पूरा होने के साथ ही उसका अवसर निकल जाता है, फिर तो लज्जा ही लज्जा हाथ रह जाती है। सामान्य से सामान्य व्यवहार में भी संकोच देखा जाता है। लोग अपना रुपया माँगने में संकोच करते हैं। लेटने में संकोच करते हैं, खाने-पीने में संकोच करते हैं यहाँ तक कि एक सभा के सहायक मंत्री हैं जो कार्य-विवरण पढ़ने में संकोच करते हैं, सारांश यह कि एक बेवकूफी करने में लोग संकोच नहीं करते और बाकी सब बातों में करते हैं। इससे उतना हर्ज भी नहीं क्योंकि बिना बेवकूफ हुए बेवकूफी का बुरा लोग प्रायः नहीं मानते। इतनी क्रियाओं का प्रतिबंधक होने के कारण संकोचशील का एक प्रधान अंग, सदाचार का एक सहज साधन और शिष्टाचार का एक मात्र आधार है। जिनमें शील-संकोच नहीं, वह पूरा मनुष्य नहीं। बाहरी प्रतिबन्धों से ही हमारा पूरा शासन नहीं हो सकता-उन सब बातों की रुकावट नहीं हो सकती जिन्हें हमें न करना चाहिए। प्रतिबन्ध हमारे अन्तकरण में होना चाहिए। यह अभ्यन्तर प्रतिबन्ध दो प्रकार का हो सकता है-एक विवेचनात्मक जो प्रयत्नसाध्य होता है, दूसरा मन प्रवृत्यात्मक जो स्वभावज होता है। बुद्धि द्वारा प्रवृत्ति जबरदस्ती रोकी जाती है, पर लज्जा, संकोच आदि की अवस्था में प्राप्त होकर प्रवर्तक मन आप से आप रुकता है-चेष्टाएँ आप से आप शिथिल पड़ती हैं। यही रुकावट सच्ची है। मन की जो वृत्ति बड़ों की बात का उत्तर देने से रोकती है, बार-बार किसी से कुछ माँगने से रोकती है, किसी पर किसी प्रकार का भार डालने से रोकती है, उसके न रहने से भलमनसाहत भला कहाँ रहेगी? यदि सबकी धड़क एकबारगी खुल जाये तो एक ओर छोटे मुँह से बड़ी-बड़ी बातें निकलने लगें, चार दिन के मेहमान तरह-तरह की फरमाइशें करने लगें, उँगली का सहारा पाने वाले बाँह पकड़कर खींचने लगे, दूसरी ओर बड़ों का बहुत कुछ बड़प्पन निकल जाये, गहरे-गहरे साथी बहरे हो जायें या सूखा जवाब

देने लगें, जो हाथ सहारा देने के लिए बढ़ते हैं वे ढ़केलने के लिए बढ़ने लगें-फिर तो भलमनसाहत का भार उठाने वाले इतने कम रह जायें कि उसे लेकर चल ही न सकें।

संकोच इस बात के ध्यान या आशंका से होता है कि जो कुछ हम करने जा रहे हैं वह किसी को अप्रिय या बेढंगा तो न लगेगा, उससे हमारी दु:शीलता या धृष्टता तो न प्रकट होगी।

इस बात का जिन्हें कुछ भी ध्यान नहीं रहता उनका दस आदमियों का साथ नहीं निभ सकता और जिन्हें अत्यन्त अधिक ध्यान रहता है उनके भी कामों में बाधा पड़ती है। मनोभावों की परस्पर अनुकूल स्थिति होने से ही संसार के व्यवहार चलते हैं। यदि एक इस बात का ध्यान रखता है कि दूसरे को कोई बात खटके न, बुरी न लगे और दूसरा उसकी हानि, कठिनाई आदि का कुछ भी ध्यान नहीं रखता है तो वह स्थिति व्यवहार-बाधक है। ऐसी स्थिति में भी संकोच करने वालों के काम देर से निकलते हैं या निकलते ही नहीं। पर इससे यह समझना चाहिए कि जितने अपने संकोची स्वभाव की शिकायत के बहाने अपनी तारीफ किया करते हैं वे सब अपनी भलमनसाहत से ही दुख भोग करते हैं। ऐसे लोगों में संकोच का तो नाममात्र न समझना चाहिए। जिन्हें यह कहने में संकोच नहीं कि हम बड़े संकोची है उनमें संकोच कहाँ उन्हें यह कहते देर नहीं लगी कि अमुक बड़ा निर्लज्ज है, बड़ा दुष्ट है।

लज्जा या संकोच यदि बहुत अधिक होता है तो उसे छुड़ाने की फिक्र की जाती है, क्योंकि उससे कभी-कभी आवश्यकता से अधिक कष्ट उठाना पड़ता है तथा व्यवहार तो व्यवहार, शिष्टाचार तक का निर्वाह कठिन हो जाता है। सुख से रहने का सीधा रास्ता बतलाने वाले ने तो आहार और व्यवहार में लज्जा का एकदम त्याग ही विधेय ठहराया है। पर मुझे तो यहाँ यह देखना है कि बात-बात में लज्जा करने वालों की मनोवृत्ति कैसी होती है, उनके चित्त में समायी क्या रहती है। कोई क्रिया या व्यापार किसी को बुरा, बेढ़ंगा या अप्रिय न लगे यह ध्यान तो निरर्दिष्ट और स्पष्ट होने के कारण कुछ विशिष्ट व्यापारों का ही अवरोध करता है क्योंकि जो-जो काम लोगों को बुरे, बेढ़ंगे या अप्रिय लगा करते हैं, उनकी एक छोटी या बड़ी सूची सबके अनुभव में रहती है। पर जो यही अनिश्चित भावना रखकर संकुचित होते हैं, कि कोई बात लोगों को न जाने कैसी लगे उन्हें न जाने कितनी बातों में संकोच या लज्जा हुआ करती है। उन्हें बात-बात में खटका होता है कि उनका बैठना न जाने कैसा मालूम होता हो, बोलना न जाने-कैसा मालूम होता हो, हाथ-पैर हिलाना न जाने कैसा मालूम होता हो, ताकना न जाने कैसा मालूम होता हो, यहाँ तक कि उनके ऐसे आदमी का होना-वे कैसे हैं चाहे वे कुछ भी न जानते हों-न जाने कैसा मालूम होता हो। न जाने कैसे लगने का डर उन्हें लोगों के लगाव से दूर-दूर रखता है। यह आशंका इतनी अव्यक्त होती है, लज्जा और इसके बीच का अन्तर इतना क्षणिक होता है, कि साधारणतः इसका लज्जा से अलग अनुभव नहीं होता ।

कुछ लोगों के मुँह से लज्जा या संकोच के मारे आदर-सत्कार के आवश्यक वचन नहीं निकलते, बहुत से लड़कों को प्रमाण करने में लज्जा मालूम होती है ऐसी लज्जा किसी काम की नहीं समझी जाती। बच्चों को अपनी तुच्छता, बुराई या बेढंगेपन की भावना बहुत कम होती है। वे अपनी क्रियाओं में स्वभावतः स्वच्छन्द होते हैं। पर विशेष स्थिति में पड़कर वे इतने भीरु और लज्जालु हो जाते हैं कि नये आदमियों के सामने नहीं आते, लाख पूछने पर कोई बात मुँह से नहीं निकालते। ऐसी दशा अधिकतर उन बच्चों की हो जाती है जो बात-बात पर उठते-बैठते, हिलते-डोलते, डाँटे, धिक्कारे, या चिढ़ाये जाते हैं। लोग अक्सर प्यार से बच्चों को किसी भद्दे, बेढंगे या बुर आदमी का ध्यान कराकर उन्हें चिढ़ाते हैं कि तुम वही हो। इस प्रकार उन्हें सहमने, संकोच करने, लज्जित होने आदि का अभ्यास कराया जाता है जो बढ़ते-बढ़ते बहुत बढ़ जाता है।

अपनी त्रुटि, बेढंगेपन, धृष्टता इत्यादि का परिचय दूसरों को-विशेषतः पुरुषों को-न मिले इसका ध्यान स्त्रियों में बहुत अधिक और स्वाभाविक होता है, इसी से उनमें लज्जा अधिक देखी जाती है। वे सदा से पुरुषों के आश्रय में रहती आयी हैं, इससे हम धृष्ट या अप्रिय न लगें, इसकी आशंका उनमें चिरस्थायिनी होकर लज्जा के रूप में हो गई है। बहुत सी स्त्रियाँ ऐसी होती हैं-विशेषतः बड़े घरों की जिनके काम-धन्धे के रूप में भी लोगों के सामने हाथ-पैर हिलाने की धड़क नहीं खुली रहती, अतः उनका अधिक लज्जाशील होना ठीक ही है। लोग लज्जा को स्त्रियों के भूषण कह-कहकर उनमें धृष्टता के दूषण से बचने का ध्यान और भी पक्का करते रहे। धीरे-धीरे उनके रूप-रंग के समान उनकी लज्जा भी पुरुषों के आनन्द और विलास की एक सामग्री हुई। रस-कोविद लोग मुग्धा और मध्या की लज्जा का वर्णन कान में डालकर रसिकों को आनन्द से उन्मत्त करने लगे।

.....

ब्रह्मास्त्र

किसी समय की बात है एक गुरू जी अपने एक मूर्ख शिष्य से बेहद क्षुब्ध थे। उस मूर्ख शिष्य को शिक्षित करने की तमाम विधियाँ उस पर निष्फल साबित हुई थी। अंत में गुरूजी ने उसे अपने पास बुलाकर उसे बहुत भला बुरा कहा। कहा कि वह परले दर्जे का मूर्ख है। वह कभी कुछ सीख नहीं सकता। वह धरती पर बोझ है। वह निश्चित रूप से अपने माँ बाप का नाम मिट्टी मे मिला देगा। उसकी माँ-बाप की उससे जो आशांए है कभी पूरी न होगी। ऐसे अकर्मण्य शिष्य को वे अब अपने पास नहीं रख सकते अतः वह आश्रम छोड़ दे।

वह शिष्य बड़ा उदास हुआ। माँ-बाप की आशाओं को मिट्टी में मिलाने वाली बात उसको अखर गई। मन ने विद्रोह किया ''नहीं, मैं मेहनत करूँगा। कुछ बन कर दिखलाऊँगा।"

इसके पश्चात कोई नहीं जानता कि वह शिष्य कहाँ गया। एक लम्बा समय बीत गया।

एक समय काशी से एक विद्वान आया। अन्य प्रान्तों से भी विद्वान आए। हर वेद-ऋचाओं पर शास्त्रार्थ हुए। श्रोतागण भी बैठे थे। बारी-बारी से सारे विद्वान काशी के विद्वान से परास्त हुए।

प्रान्तीय नरेश ने एक हजार स्वर्ण मुद्राओं के साथ एक उत्तरीय भेंट किया। नरेश ने पूछा, ''महात्मन आप को इतना ज्ञान है, यह तो बता दीजिए कि आपके गुरु कौन हैं?''

''मेरे दो गुरु हुए हैं। पहला जिसने मेरी बड़ी उपेक्षा करी और दूसरे वह जिनके ज्ञान की आभा मेरे मुख मण्डल पर परिलक्षित होती है। उस विद्वान ने बताया।''

अब श्रोतागणों में से एक वृद्ध जन उठे। वे उसके पास गए। बोले ''बेटा तुम्हारे पहले गुरु के पास एक ही ब्रह्मास्त्र बचा था। जिसका प्रयोग उन्होंने तुम्हारे अज्ञान को खत्म करने के लिए किया था। विश्वास नहीं होता उस ब्रह्मास्त्र का प्रयोग विफल रहा यह प्रतीत होता है।

काशी के उस विद्वान ने तत्क्षण उस वृद्ध व्यक्ति के पाँव पकड़ लिए। गुरु जी क्षमा करें। आपने आश्रम जाना छोड़ दिया। आप विलुप्त हो गए। मैंने आपको कहाँ-कहाँ नहीं ढूंढ़ा। मैं जो भी हूँ आप की वजह से हूँ। यदि उस समय आपने मुझ पर उपेक्षा रूपी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग न किया होता तो मैं इस प्रशस्ति पर न पहुँचता। मुझे स्मरण था कि आप कभी भी बोधात्मक सभाओं को छोड़ा नहीं करते। इसी कारण मैने मंच

से पहले गुरु को उनकी भर्त्सना करते हुए याद किया। आपकी तरह मानव स्वभाव पर विशेषज्ञता हासिल करने का यह प्रभाव है कि मैंने आपके दुर्लभ दर्शन प्राप्त किए। जीवन पर्यन्त नहीं भूल सकता कि गुरु, गुरु होता है, सार्थक जीवन तो गुरु से ही शुरू होता है। '' दीर्घ स्वाश के साथ काशी के वे विद्वान अपने वृद्ध गुरु के पैरो पर सिर रख कर कहते चले गए। वृद्ध गुरु ने उन्हें उठाया और कहा, ''वत्स, कीर्तिमान भव। ध्यान रखना और किसी से न कहना। यह ब्रह्मास्त्र हर गुरु के पास होता है। इसका प्रभाव अकाट्य होता है। इसका आशीर्वाद अति विशिष्ट को ही प्राप्त होता है। और सबसे जरूरी बात इसका प्रयोग विशिष्ट परिस्थितियो में ही किया जाना चाहिए।''

उपस्थित बौद्धिक जन धन्य-धन्य कह उठे।

संतोष कुमार गोड़िया
शिक्षक, ऑपरच्युनिटी स्कूल

.....

शिक्षा

सर्वांगीण शिक्षा क्या है, इसके निहितार्थ क्या हैं, यह पता लगाना क्या हममें से प्रत्येक के लिए महत्वपूर्ण नहीं है? यदि हम इसका पता लगा सकें, किसी वर्ग विशेष से जुड़कर नहीं बल्कि स्वतंत्र रूप से, कि मानव मात्र के लिए महत्व रखने वाली ऐसी सर्वांगीण शिक्षा के मूलभूत तत्व कौन से हों, तभी हम एक अलग तरह का विश्व बना सकेंगे।

– जे. कृष्णमूर्ति

एक पुराने आम के पेड़ पर एक छोटी चिड़िया अपने चूजों के साथ एक घोसले में रहती थी। वह प्रतिदिन भोजन की खोज में इधर-उधर जाती व अपने बच्चों के लिए दाने लाती और उन्हें खिलाती। एक दिन उस चिड़िया ने घोसले से नीचे जमीन पर देखा कि बहुत सारे अनाज के दाने पड़े हैं वह बहुत प्रसन्न हुई कि आज उसे भोजन की खोज में अधिक दूर नहीं जाना होगा। वह थोड़ी-थोड़ी देर में पेड़ से नीचे आती अपनी चोंच में दाना भर कर अपने बच्चों को चुगवाती। यह क्रम काफी देर तक चलता रहा। तभी कुछ शरारती बच्चों नें उस चिड़िया को देखा और उस पर पत्थर मारना शुरु कर दिया। जिससे उसे पीड़ा होने लगी वह दर्द से कराह रही थी, अपने पंख फड़फड़ा रही थी। यह सब देखकर उन शरारती बच्चों को आनन्द आ रहा था। थोड़ी देर में वह लगभग मरणासन्न हो गयी। यह देखकर उस चिड़िया के बच्चे व्याकुल हो गए। मरणासन्न स्थिति में चिड़िया यह सोचने लगी कि अब क्या होगा? क्या उसके सपने अधूर रह जायेंगे? उसके बच्चों का क्या होगा? अभी तो उन्हें उड़ना सिखाना था मजबूत बनाना था। उन शरारती बच्चों को क्या वो तो आनन्द ले रहे थे। चिड़िया को मरणासन्न स्थिति में छोड़कर वे सब आगे बढ़ गए और किसी और को पत्थर मारने। किन्तु अगले ही क्षण कुछ ऐसा हुआ मरणासन्न स्थिति में पड़ी हुई चिड़िया के पंख हिले, उसके अन्दर कुछ चेतना आई। उसने बहुत कोशिश की उड़ने की किन्तु वह उड़ न सकी। वह सतत् प्रयास करती रही और अन्त में वह उड़ी पर इस बार वह अपने शारीरिक बल से नहीं अपितु अपने आत्मबल से उड़ी। आज उसने अपने बच्चों को अनायास ही एक शिक्षा दे दी कि आत्मबल से बड़ा कोई बल नहीं है विषम परिस्थितियों में आत्मबल ही सर्वश्रेष्ठ बल है।

कुछ इसी तरह का है हमारा यह समाज या यूँ कह सकती हूँ यह पत्थर बाज समाज। परन्तु यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि हम स्वयं भी उसी समाज का हिस्सा हैं, समाज के नैतिक नियमों के अनुरूप चलना हमारा उत्तरदायित्व है। परन्तु यहाँ यह बात विचारणीय है कि हमें स्वयं को इस समाज में कैसे स्थापित करना है। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज द्वारा फेंके पत्थरों से डरना है, चोट खाना है या फिर उन्हीं पत्थरों का पुल बना कर आगे बढ़ना है और एक नई इबारत लिखना है। मार्ग आपको चुनना है।

संस्कृत में एक श्लोक है-

उदेति सविता ताम्र, ताम्र एवास्तमेति च।
संपत्तौ च विपत्तौ च महतां एक रूपता।।

अर्थात् उगता हुआ सूर्य व अस्त होता सूर्य दोनो ही स्थिति में सूर्य का रंग एक जैसा होता है। उसी प्रकार महापुरुष सुख दुख में एक समान व्यवहार करते हैं।

अतः मनुष्य को विषम परिस्थितियों में धैर्य बनाये रखना चाहिए या यूँ कह सकते हैं कि एक हल्की सी मुस्कान के साथ हम अपनी परेशानियों को मात दे सकते हैं।

इस संसार में ऐसे अनेकों व्यक्तियों के उदाहरण मिल जाएंगे जिन्होंने अपने आत्मबल से अपनी परेशानियों को सुलझाया है। उन्होंने अपने आत्मज्ञान की तलवार से अपने हृदय से अज्ञान के संदेह को काटकर अलग किया, जीवन को अनुशासित किया और कर्मपथ पर आगे बढ़े। हमें भी इनसे प्रेरणा लेकर अपने कर्मपथ की ओर अग्रसर होना चाहिए। फिर हम देखेंगे कि जो समाज हमारी आलोचना करता है वही हमारी सराहना भी करेगा।

श्वेता तिवारी
संगणक केन्द्र

.....

होड़ सी लगी है लीक से हटने की,
प्रतिस्पर्धी हो, असाधारण बनने की।
कोई सामान्य नहीं कहलाना चाहता,
हर मन की आकांक्षा, बनना निराला।

सोचता हूँ मैं भी, असामान्य कैसे बनूँ?
चिन्ता में हूँ, कि महान कैसे बनूँ?
ये न्यारे महानुभाव आते हैं कहाँ से?
क्या खाते हैं? मुझसे क्या वे भिन्न करते हैं?

योग्य उत्तर की खोज में भटका मैं चारों ओर,
जिज्ञासा मन की समेटे, टटोला मैंने हर छोर।
घूमा मैं नदी-पहाड़-जंगल, लगाकर पूरा जोर,
माँ गंगा ने फिर सुलझाई, उलझे मन की डोर।

ये नस्ल नहीं मंगल से, न ही गुरु और शुक्र से,
न ही उत्पत्ति इनकी, राहु-केतु के पूजन से।
असाधारण क्षमताएँ हैं साधारण जनमानस में,
महानता का तत्व छिपा, सुप्त प्राणिमात्र में।

समर्पण, निग्रह, अनुराग, नम्रता,
इनसे सिंचित ये श्रेष्ठता का अंश।
संयम, विनय, अनुशासन, निष्ठा,
इनसे पोषित ये प्रभुता का वंश।

अभ्यास, कल्पना, जोश, प्रतिज्ञा,
इससे अभिप्रेरित हैं ये आत्माएं।
संकल्प, धैर्य, त्याग, तपस्या,
इससे उत्प्रेरित हैं ये प्रतिमाएं।

दूसरों की देखा-देखी कब तक यूँ भागोगे?
अंधक चौंध में कब तक यूँ तुम हाँफोगे?
सामान्य तो बन न सके, आधी उम्र कट गयी,
महान कैसे बनोगे, मति तुम्हारी जो मर गयी।

औसत तो फाँदे नहीं, महत्तम कैसे साधोगे?
ईर्ष्या, द्वेष, कटुता से भागीरथी कैसे तारोगे?
ललकारो स्वयं को! सामान्य बनकर दिखलाओ,
व्यर्थ चली इस होड़ से, मुक्ति स्वयं को दिलवाओ।

प्रो. समीर खांडेकर
यांत्रिक अभियांत्रिकी विभाग
प्रयागराज, माघ पूर्णिमा, 2019
कुंभ मेले के जीवंत साक्षात्कार के बाद

.....

ख्वाब

ख्वाब में तो आओ ज़रा,
नींदें महकाओ ज़रा।
दुनिया जहां छोड़ कर,
रूह में बस जाओ ज़रा।।
भटके हम यहाँ वहाँ,
सुकून कहीं मिलता नहीं।
झूठे चेहरे सब यहाँ
सच कहीं दिखता नहीं।।
रौशनी दिखाओ ज़रा,
चाँद तक ले जाओ ज़रा।
बातें अधूरी रही जो,
गा के सुनाओ ज़रा।।
ख्वाब में तो आओ ज़रा,
आके रह जाओ ज़रा।।

जतिन देव
छात्र, संगणक विज्ञान एवं अभियांत्रिकी

गरीबी

आह! ये गरीबी क्यों है?
हृदय विदीर्ण हो जाता है।
वो मार्मिक दृश्य देखकर,
वो जीवन की सड़ांध,
वो बिलबिलाती भूख,
वो जाड़े से ठिठुरना,
अपने बच्चों को भूखा सुलाकर कोने में बैठी,
वो माँ जब जलती हुई चिमनी
को निहार कर आँसू गिराती है।
तब वो रात दुर्दान्त नागिन सी बन जाती है।
तब ये मन ठिठक जाता है,
कि क्या दुर्दशा है देश की,
आखिर ये गरीबी क्यों है?
कोई तो पैसे के बिछौने पर सोता है,
और कोई रोटी के लिए रोता है,
कोई तो लाखों के सूट पहनता है, तो
कोई तन ढ़कने को तरसता है।
आखिर ये गरीबी क्यो है?

डॉ असित बाजपेयी, REO

आई आई टी कानपुर में कारगिल विजय दिवस की 20वीं वर्षगाँठ पर सैनिक की प्रतिमा की स्थापना की।

हिन्दी विकिपीडिया पर कार्यशाला निदेशक प्रो अभय करींदकर प्रो टी वी प्रभाकर एवं प्रो एच सी वर्मा

आई आई टी कानपुर ने जीवन रक्षक यंत्र तैयारकर एसजीपीजीआई लखनऊ को सौपा

मदन लाल धींगरा अप्रतिम साहस की मिसाल

बलिदानी

1 जुलाई, 1909 को लंदन में इंपीरियल इन्स्टीट्यूट के जहाँगीर हॉल में एक अंग्रेज, कर्जन वाइली की अंग्रेजों के ही देश में हत्या कर दी गई। इस घटना को अंजाम देने वाले युवक का नाम मदन लाल धींगरा था। यह घटना 1897 में पूना में मि. रैंड की हत्या, 30 अप्रैल 1908 को मुजफ्फरनगर में किंग्सफोर्ड की हत्या प्रयास तथा 31 अगस्त 1908 क्रांतिकारी संगठन के विश्वासघाती सदस्य नरेन्द्र गोसाईं की हत्या की अगली कड़ी थी।

पंजाब निवासी मदन लाल धींगरा के पिता डॉक्टर थे। मदन लाल ने अमृतसर से इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद लाहौर के किसी कॉलेज में प्रवेश लिया। फिर कुछ समय बाद पढ़ाई छोड़कर कश्मीर सेटेलमेन्ट विभाग में नौकरी आरंभ की। वहाँ मन न लगने पर 1906 में इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे इंग्लैंड चले गए। 1909 में उन्हें भारत वापस आना था, जो संभव नहीं हो सका। नियति को संभवत उनसे कुछ और काम लेना था।

उस समय लंदन में श्यामजी कृष्ण वर्मा अपनी तरह से अपनी जन्मभूमि की सेवा में व्यस्त थे। 1897 में लंदन आने के बाद उन्होने शनैः शनैः अपने चारो तरफ देशभक्त भारतीय युवकों के ऐसे दल का निर्माण किया जिसका लक्ष्य विदेश में रहकर भारत को आजाद करने की दिशा में अनवरत् प्रयत्न करते रहना था। लाला हरदयाल, वीरेन्द्र नाथ चट्टोपाध्याय, मैडम भीकाजी कामा, विनायक दामोदर सावरकर, राणा इस प्रयास में उनके प्रमुख साथी बने। 1905 में श्याम जी के द्वारा स्थापित इंडिया हाउस छात्रावास क्रांतिकारियों के लिए एक ऐसा मंदिर था जहाँ देश की आजादी की उपासना की जाती थी। क्रांतिकारी साहित्य की रचना, भारत में होने वाली राजनीतिक हलचलों पर चिंतन, 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के वीरों पर चर्चा, भारत को किस प्रकार परतंत्रता से मुक्ति दिलाई जाये इत्यादि ही वहाँ एकत्रित होने वाले देश भक्तों की चर्चा के मुख्य विषय हुआ करते थे।

मदन लाल धीगरा ने इंडिया हाउस को अपना निवास स्थान बनाया। वहाँ की इन चर्चाओं में वे प्रायः उपस्थित रहते थे। इंडिया हाउस और उससे जुड़े देशभक्तों के लिए वर्ष 1908 विशेष महत्व रखता है। सावरकर नें 10 मई, 1908 को इंडिया हाउस में 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की पचासवीं वर्षगाँठ मनाई। यह एक विराट आयोजन था इस अवसर पर शहीदों की स्मृति से अंकित बैज बाँटे गए थे।

मदन लाल इस बैज को लगाकर अपनी कक्षा में गए जहाँ उन्हें बैज उतारने का आदेश दिया गया लेकिन उन्होंने नहीं माना। फलस्वरूप उनके अंग्रेज सहपाठियों ने उनकी भर्त्सना की। इससे उत्तेजित होकर मदन लाल ने एक सहपाठी का गला काट देने की धमकी दी।

इस घटना से यह स्पष्ट होता है कि मदन लाल निर्भीक थे। अपने स्वदेश प्रेम को उन्होनें कदापि नहीं छुपाया जबकि उन्हें उसके परिणामों का भली भाँति ज्ञान था। भारत में उनके पिता उनकी गैर शैक्षणिक कार्यवाइयों से बहुत चिंतित हुए। उन्होनें मदल लाल को समझाने का प्रयास किया किन्तु उसमें वे सफल नहीं हुए। मदल लाल के भाई ने कर्जन वाइली से अनुरोध किया कि वे मदन लाल को सुधारने का प्रयत्न करें। इस पर मदन लाल ने अपने भाई को जो उत्तर दिया वह उनकी स्वतंत्र मानसिकता का परिचायक है। उन्होंने लिखा कि वाइली जैसे ऐंग्लो इंडियन को किसी भारतीय के व्यक्तिगत मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है।

कर्जन वाइली भारतीय सेना में अफसर थे। सेना से अवकाश प्राप्ति के उपरान्त 1901 में उन्हें लंदन में सेक्रेटरी ऑफ स्टेट का पोलिटिकल ए डी सी बनाया गया। सेक्रेटरी ऑफ स्टेट की ओर से एक कमेटी बनाई गई थी जिसका कार्य लंदन आये भारतीय विद्यार्थियों पर निगाह रखना था। वाइली भी इस कमेटी के सदस्य थे। इंडिया हाउस की गतिविधियाँ, उसमें होने वाली सभाये, चर्चायें, अंग्रेज सरकार के लिए चिंता का विषय थी। वाइली को अपने स्तर से, अपने तरीके से इन विद्यार्थियों पर नियंत्रण रखना था।

उन वर्षों में भारत में होने वाली तत्कालीन घटनाओं का मदन लाल पर बहुत प्रभाव पड़ा। 1908 के अलीपुर षड़यंत्र केस और जून 1909 में गणेश सावरकर के निर्वासन दंड ने उन्हें उद्देलित किया। उन्हें ऐसा

लगने लगा कि निष्क्रियता त्यागकर अब कुछ किया जाना चाहिए। निस्संदेह इंडिया हाउस में सावरकर के सान्निध्य ने उनके हृदय की हलचलों को और भी हवा दी। उन्होंने उनसे कहा, शहादत का समय अवश्य आ गया है जिसे वे अच्छी तरह से समझ गये। परिणाम स्वरूप उन्होनें इंडिया हाउस में रहना छोड़ दिया। वे नहीं चाहते थे कि उनके किसी कार्य से इस संस्था पर कोई संकट आये। उन्होनें बिना किसी से परामर्श लिए एक कोल्ट रिवाल्वर और एक पिस्तौल खरीदा जिससे वे निशाना लगाने का अभ्यास करने लगे। अब कर्जन वाइली को मारना उनका एक मात्र लक्ष्य बन गया था।

मदन लाल अब वाइली की दिनचर्या पर नजर रखने लगे। उन्होंने अपना लक्ष्य पूरा करने के लिए 01 जुलाई, 1909 का दिन निश्चित किया। उस दिन नेशनल इंडियन एसोशिएशन की वार्षिक मीटिंग होनी थी। वाइली इस मीटिंग के प्रमुख अतिथियों में एक थे। मीटिंग जहाँगीर हॉल में होनी थी। मदन लाल समय से वहाँ पहुँच गए। संगीत कार्यक्रम के समाप्त होने पर जब वाइली सीढ़ियों से नीचे उतरने लगे तभी मदन लाल उनसे मिलने के लिए आगे बढ़े। वे उनसे मिले और बात करते-करते उन्होनें अचानक शीघ्रता पूर्वक अपना रिवॉल्वर निकाला और वाइली के चेहरे को निशाना बनाते हुए पाँच गोलियाँ चलाईं। पाँचवीं गोली पर वाइली गिर गए और तत्काल उनकी मृत्यु हो गई। एक पारसी सज्जन कावस लाल काका ने वाइली की रक्षा करनी चाही और उनके बीच में आ जाने के कारण मदन लाल को उन्हें भी अपनी गोली का शिकार बनाना पड़ा। मदन लाल ने स्वयं आत्महत्या का प्रयास किया लेकिन रिवाल्वर में गोलियाँ समाप्त हो जाने के कारण ऐसा संभव नहीं हो सका। उनके पास दूसरा शस्त्र भी था किन्तु उसका प्रयोग करने का उन्हें अवसर नहीं मिला। वे पकड़ लिए गए।

इस घटना को अंजाम देते समय तथा बंदी होने के बाद भी वे शांत बने रहे। जब पुलिस द्वारा उनके लिए हत्यारे शब्द का प्रयोग किया गया तो उन्होनें इसका विरोध करते हुए कहा, मैं एक देशभक्त हूँ और अपनी मातृभूमि को विदेशी राज्य से मुक्त करने के लिए कार्य कर रहा हूँ। मेरे लिए हत्यारे शब्द के प्रयोग का मैं विरोध करता हूँ क्योंकि मैनें जो भी किया है, वह न्यायोचित है। अंग्रेज भी यही करता यदि जर्मन लोगों नें इंग्लैंड पर कब्जा कर लिया होता।

23 जुलाई, 1909 को ओल्ड बेली के सेशन कोर्ट में मदन लाल को मृत्यु दंड देने का निर्णय लिया गया। फाँसी की सजा सुनते ही मदन लाल ने जज से कहा मैं आपको अपने देश की ओर से धन्यवाद देता हूँ। मुझे इस बात पर गर्व है कि मुझे यह प्रतिष्ठा मिली कि मैं अपने देश के लिए अपने तुच्छ जीवन को निछावर करूँ।

मदन लाल को स्वयं पर गर्व था और देश को उन पर गर्व था जब कि उनके पिता और भाई इस देशप्रेमी के अभूतपूर्व त्याग से लज्जित थे। पिता ने भारत के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट लॉर्ड मार्ले को तार द्वारा सूचित किया मैं मदन लाल को अपना पुत्र नहीं मानता। उसका पिता कहलाने में मुझे शर्म आती है। यहाँ तक कि सार्वजनिक सभा में उनके भाई ने उन्हें अपना भाई मानने से इंकार कर दिया।

लंदन में ही एक और आश्चर्यजनक घटना घटी। 5 जुलाई, 1909 को वहाँ विपिन चन्द्रपाल के सभापतित्व में एक सभा हुई। उस सभा में मदन लाल के आलोचक एवं सावरकर जैसे प्रशंसक उपस्थित थे। सभा में निंदा प्रस्ताव पास होना था। तमाम आलोचकों ने धीगरा के विरोध में भाषण दिए जब कि सावरकर खामोश रहे। लेकिन अंत में उनके धैर्य का बाँध टूट गया। वे खुलकर धींगरा का समर्थन नहीं कर सकते थे फिर भी उन्होनें कहा कि चूँकि धींगरा का केस कोर्ट में विचाराधीन है, अतः निंदा का प्रस्ताव पास नहीं किया जाना चाहिए। सावरकर के इस कथन पर पर्याप्त प्रतिक्रिया हुई, कुछ अशोभनीय घटनाएं भी हुईं। जिनके विस्तार में जाना उचित नहीं है। संक्षेप में, श्याम जी कृष्ण वर्मा उस समय पेरिस में रह रहे थे, ने द टाइम्स समाचार पत्र में लिखा 'यद्यपि इस हत्या से मेरा कोई भी संबंध नहीं है, मैं स्पष्ट रूप से स्वीकार करता हूँ कि मैं इस कृत्य का समर्थन करता हूँ और इसके कर्ता को भारतीय स्वतंत्रता का शहीद मानता हूँ।'

श्यामजी का यह वक्तव्य अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं था। 01 जुलाई, 1909 को ही लॉयड जार्ज ने विन्सटन चर्चिल से धींगरा की देशभक्ति की प्रशंसा की थी। स्वयं चर्चिल ने भी धींगरा के अंतिम शब्दों की सहाहना करते हुए कहा था कि देश के नाम पर इतना सुन्दर और उदात्त वक्तव्य पहले कभी नहीं दिया गया। आयरलैंड के पत्रों ने एक स्वर से धींगरा की प्रशंसा की और लिखा कि आयरलैंड मदन लाल धींगरा का सम्मान करता है जिन्होंने अपने देश पर अपने जीवन को कुर्बान कर दिया। माई डायरीज के लेखक डब्ल्यू एस ब्लंट के अनुसार धींगरा की फाँसी भारत वर्ष की संतानों को सदियों तक शहादत का पाठ पढ़ाती रहेगी। ब्लंट द्वारा किए गए एक इंटरव्यू में मि. लीन स्टीवेन्स ने

स्वीकार किया था कि भारत में अंग्रेजी प्रशासन में कहीं कुछ गलत है। स्वयं अंग्रेज होते हुए भी उन्होनें स्वीकार किया कि यह कहना गलत है कि अंग्रेज कभी धमकी के आगे नहीं झुकते हैं और यह भी कि मेरा अनुभव है जब इंग्लैंड के मुँह पर करारा तमाचा पड़ता है तभी वह माफी माँगता है, इसके पहले नहीं।

मदन लाल धींगरा पर कुछ भी लिखना अधूरा है जब तक कि उनके अंतिम बयान के बारे में न जाना जाये। कोर्ट में उपस्थित होने के समय उनकी जेब में एक लिखित बयान रखा था जिसे पुलिस अधिकारियों ने अपने पास रख लिया था। धींगरा उस बयान की बार-बार चर्चा करते रहे। इंडिया हाउस के देशभक्त क्रांतिकारियों ने उस बयान को किसी तरह प्राप्त करके धींगरा की शहादत से पूर्व प्रकाशित कराने का निश्चय किया, जिसमें वे सफल भी हुए। पूर्ण आत्म विश्वास और देश भक्ति से लबरेज उनका वह बयान इस प्रकार था-"मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने उन दिन अंग्रेज का खून बहाने का प्रयास किया। यह प्रयास भारत के नौजवान देशभक्तों को फाँसी और कालापानी की सजाओं का एक साधारण सा प्रतिरोध था।

मैंने अपनी आत्मा की पुकार के अतिरिक्त इस संबंध में किसी से परामर्श नहीं किया। इसे मैंने अपना कर्तव्य समझकर ही किया है।

हिंदू होने के नाते मेरा पूर्ण विश्वास है कि राष्ट्र के प्रति अन्याय ईश्वर का ही अपमान है। ...मुझ सा निर्धन और बुद्धिहीन पुत्र माँ को अपनी रक्तांजलि देने से अधिक और कुछ नहीं कर सकता, इसीलिए मैनें माँ के चरणों पर अपनी बलि चढ़ाई।

वर्तमान परिस्थितियों में भारत वर्ष को किस प्रकार आहुतियाँ देनी हैं, बलिदान देना है, यह सीखना अति आवश्यक है। यह शिक्षा स्वतः बलिदान हो कर ही दी जा सकती थी, इसलिए मैं स्वतः अपना बलिदान कर रहा हूँ। यह युद्ध तब तक भारत वर्ष और इंग्लैंड के बीच चलता रहेगा जब तक अंग्रेजों का हिन्दुस्तान पर आधिपत्य कायम रहेगा।

मेरी ईश्वर से एक मात्र यही प्रार्थना है कि मेरा भारत वर्ष में पुनः जन्म और मृत्यु हो जब तक कि वह स्वाधीनता नहीं प्राप्त कर लेता।"

मदन लाल धींगरा के साहस और शौर्य की जितना भी प्रशंसा की जाये, कम है। 22 वर्ष का यह नवयुवक अपने परिवार के विरोध के बावजूद अर्जुन की भाँति केवल एक लक्ष्य को पूरा करने का विचार करता रहा, मौन रहकर उसी संबंध में योजनायें बनाता रहा। कोई नहीं जान सका कि उसके हृदय में कैसा तूफान उठ रहा था। उसके सामने केवल एक लक्ष्य था-अंग्रेजी शासन के दमन और अन्याय का विरोध करना, विरोध भी कुछ इस प्रकार का जो दूर तक अपना प्रभाव छोड़े और यह प्रदर्शित करे कि भारत अब जाग उठा है।

ऐसे वीर के लिए हमारा मस्तक स्वयमेव श्रद्धा से झुक जाता है।

डॉ ऊषा निगम
पूर्व छात्र - परिजन

.....

भारतीय संस्कृति की आधारशिला पूर्ण रूप से नैतिक मूल्यों पर निर्भर करती है। यह कहना बिलकुल गलत नहीं होगा कि नैतिक मूल्यों के बिना मानव समाज का जीवन बिन माझी की नौका के समान है, जिसकी न तो कोई निश्चित दिशा होती है और न ही कोई मंजिल। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीन संस्कृति है जो भारत को विश्व गुरु का दर्जा प्रदान करती है भारत को यह सम्मान उसके नैतिक मूल्यों के कारण ही संभव हो सका है। हमारे समाज में प्रेम, भाईचारा, सद्भाव, संस्कार, परोपकार, सम्मान, संतोष, विनम्रता, सेवाभाव, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, राष्ट्रवाद, अहिंसा आदि मानवीय गुण का सृजन नैतिक मूल्यों के आधार पर ही संभव है। वास्तव में यदि यह कहा जाय कि नैतिक मूल्य व्यक्ति को वह गुण है जिससे वह स्वयं का सर्वांगीण विकास और कल्याण करने के साथ-साथ समाज के विकास और कल्याण में अंततः कोई समस्या उत्पन्न नहीं आने देता। व्यक्ति नैतिक मूल्यों के आधार पर ही सत्य, असत्य, अच्छा-बुरा तथा उचित-अनुचित का निर्णय ले सकता है। विश्व के दार्शनिकों, समाजशात्रियों, मनोवैज्ञानिकों, शिक्षा-शात्रियों, नीति-शास्त्रियों ने नैतिकता को मानव के लिए एक आवश्यक गुण माना है। नैतिक मूल्य ही व्यक्ति को वास्तविक मानव बनाते हैं। राम, कृष्ण एवं गौतमबुद्ध साक्षात ईश्वर इसलिए माने जाते हैं क्योंकि इनके कर्म के अनुरूप थे। नैतिक मूल्यों-सत्यप्रियता, त्याग, उदारता, विनम्रता, करुणा, हृदय की सरलता और अभिमान हीनता जैसे नैतिक मूल्यों के बारे में सभी को पता है। यदि मनुष्य में नैतिकता न हो तो पशु और मनुष्य में कोई विशेष अंतर नहीं रह जाता है। नैतिकता ही मानवता का श्रंगार है। समाज में व्यक्ति दो चीजों से पहचाना जाता है पहला ज्ञान और दूसरा उसका नैतिक व्यवहार। व्यक्ति के चौमुखी विकास के लिए यह दोनों अति आवश्यक है। अगर ज्ञान सफलता की चाबी है तो नैतिकता सफलता की सीढ़ी। एक के अभाव में दूसरें का पतन निश्चित है। नैतिकता के कारण ही विश्वास में दृढ़ता और समझ में प्रखरता आती है। नैतिक मूल्यों के कारण ही समाज में संगठनकारी शक्तियां व प्रक्रिया गति पाती हैं और विघटनकारी शक्तियों का क्षय होता है। विश्व बंधुत्व की भावना, मानवतावाद, समता-भाव, प्रेम और त्याग जैसे नैतिक गुणों के अभाव में विश्व शांति, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग आदि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। नैतिकता सामाजिक जीवन को सुगम बनाती है और समाज में अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण रखती है। समाज राष्ट्र में एकीकरण और अस्मिता की रक्षा नैतिकता के अभाव में नहीं हो सकती है। नैतिक मूल्यों को समझने के लिए हमें भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली पर एक नजर अवश्य डालना चाहिए।

भारतीय शिक्षा का इतिहासः

1. वैदिक शिक्षाः इतिहासकारों द्वारा वैदिक काल का समय 2500 ई. पू. से 500 ई. तक माना जाता है। भारत में सर्वप्रथम शिक्षा वैदिक शिक्षा ही है, जो हमारी संस्कृति की पहचान है। इस शिक्षा पद्धति में शिक्षा का तात्पर्य वेदों के अनुसार शिक्षा प्राप्त करना था तथा शिक्षा का अर्थ आत्मानुभूति एवं आत्मबोध कराना था। इस काल में शिक्षा का उद्देश्य पवित्रता की भावना का विकास करना, चरित्र निर्माण करना, व्यक्तित्व तथा सामाजिक एवं धार्मिक भावना का विकास करना और नैतिक मूल्यों का ज्ञान करना होता था। इस काल में नारियों को शिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। इस काल में शिक्षा का सर्व प्रमुख उद्देश्य छात्रों के चरित्र का निर्माण करना था जिससे उनमें अच्छे संस्कारों का विकास हो सके।

2. बुद्धकालीन शिक्षाः बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा गौतम बुद्ध थे। बुद्धकालीन शिक्षा में बिना भेदभाव के सभी समुदाय के लोगों को शिक्षा का अवसर मिलता था। इस काल में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मनुष्य में आत्मसंयम, आत्मनिर्भरता आत्मविश्वास, करुणा, चरित्र निर्माण संस्कृति संरक्षण, अनुशासन, समाज सेवा जैसे महत्वपूर्ण गुणों का विकास था। इस शिक्षा में नैतिक मूल्यों के ज्ञान पर अधिक बल दिया जाता था। बुद्ध काल में स्त्रियों को शिक्षा प्रदान नहीं की जाती थी। इस काल में अध्यापक और विद्यार्थी के बीच मधुर एवं प्रगाढ़ सम्बन्ध होता था। छात्र अपने गुरुओं की सेवा करते थे और गुरु के प्रति सच्ची भक्ति एवं श्रद्धा-भाव रखते थे।

3. मध्यकालीन शिक्षा (मुगल-शिक्षा): मुगलों ने भारत पर शासन करने के साथ-साथ यहाँ अपने धर्म का प्रचार प्रसार किया और बौद्ध धर्म के सर्वश्रेष्ठ विद्यालयों को नष्ट करवा दिया परन्तु वैदिक शिक्षा प्रणाली के शिक्षा केंद्र दूर घने जंगलों में होने के कारण ये इनकी ओर मुगल शासकों का ध्यान नहीं गया, जिसके कारण ये केंद्र चलते रहे। इतिहासकारों ने 1200 ई. से 1757 ई. के काल को मध्यकालीन अथवा मुगल काल का नाम दिया है। इस काल में शिक्षा, हस्तकला शिक्षा, चिकित्साशास्त्र की शिक्षा आदि प्रदान की जाती थी । इस काल में पर्दा प्रथा होने के कारण स्त्री शिक्षा में प्रगति नहीं हो सकी । इस काल में छात्रों को छोटे-छोटे अपराधों पर कठोर शारीरिक दण्ड दिए जाते थे, जिससे छात्र शिक्षकों से भयभीत रहते थे और अपनी समस्या का समाधान नहीं कर पाते थे ।

4. ब्रिटिश कालीन शिक्षाः मुगल शासन के दौरान भारतीय शिक्षा धार्मिक पक्षपात से परिपूर्ण थी, तो ब्रिटिश शासन के दौरान उसमें पूर्ण परिवर्तन लाया गया । परन्तु ब्रिटिश शासकों ने भारतीय संस्कृति और भारतीय सभ्यता पर अनैतिकता का कड़ा प्रहार किया देश को संस्कृतिक, भौगोलिक तथा आर्थिक रूप से खोखला कर दिया। अपनी कूटनीतिक चाल से देश के नागरिकों को एक दूसरे का दुश्मन बना दिया। उनके शासन में भारतीय मूल में नैतिकता का पूरी तरह से पतन हो गया था जिसका असर आजादी के 70 वर्षों बाद भी दिखाई पड़ रहा है। इस तरह धीरे-धीरे भारत में नैतिक मूल्यों का पतन होता चला गया ।

आधुनिक भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों के पतन के कारण उत्पन्न समस्याएंः

नैतिक मूल्यों के अभाव में किसी भी राष्ट्र का विकास संभव नहीं हो सकता। आज के दौर में चारों ओर असंतोष व्याप्त है । छल, कपट, धोखा, कत्ल, लूटपाट, बलात्कार आदि कई तरह के अपराध हमारे चारों तरफ व्याप्त है। आज के इस भौतिक युग में दया, मान-सम्मान, सहयोग, वेदना, परोपकार आदि जैसे मानवता के गुण धीरे-धीरे समाप्ति के कगार पर पहुँच गये हैं। हर इंसान चाहे गरीब हो या अमीर अधिक से अधिक धन कमाने की ही चेष्टा रखता है, चाहे उसका रास्ता सही हो या गलत। आज का विकासशील भारत विकसित राष्ट्र बनने की दौड़ में अन्य देशों से आगे बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। परन्तु कोई राष्ट्र तब तक पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो सकता जब तक भ्रष्टाचार, लूट, डकैती, कत्ल, बलात्कार जैसे जघन्य अपराधों पर सरकार काबू पा नहीं लेती । आज के दौर में इंसान अपनी भौतिक सुख सुविधाओं की प्राप्ति इतना ज्यादा व्यस्त है कि उसके पास अपने परिवार के लिए समय नहीं है। इन्हीं भौतिक सुविधाओं की प्राप्ति के लिए हर इंसान अपनी सामाजिक तथा भौतिक जिम्मेदारियों से कट गया है। नैतिक मूल्यों के अभाव के कारण आज की नई पीढ़ी अपने माता-पिता, बड़े-बुजुर्ग और अपने गुरुजनों का सम्मान नहीं करते और न ही अनुशासित रहते है। आज हम अपने बच्चों को नैतिक मूल्यों का ज्ञान देने में असफल हो रहे हैं। लगभग 3-4 दशकों से मानव के सामाजिक जीवन में बहुत तेजी से बदलाव हुआ है । आज का हर व्यक्ति समाज और संयुक्त परिवार से दूरी बना कर रखना चाहता है। परिवार का दायरा इतना सीमित हो गया है कि उसमें पत्नी और बच्चों का ही समावेश संभव रह गया है।

आज की पीढ़ी अपने बुजुर्ग माता-पिता को बोझ समझती हैं। अधिकतर परिवारों में पुत्र अपने माता-पिता से सम्पति के लिये लड़ते झगड़ते रहते हैं। संपत्ति के लालच में इंसान इस कदर अन्धा हो गया है कि वह सही-गलत का फर्क भूल गया है। सभी पारिवारिक व सामाजिक मजबूत रिश्तों को इस लालच और बेईमानी नाम के दीमक ने पूरी तरह से खोखला कर दिया है। जिस तरह उच्च वर्ग भौतिक सुख-सुविधाओं की पूर्ति के लिए अनैतिक तथा प्राकृतिक नियमों के विपरीत जीवन यापन के कारण कई तरह की स्वास्थ्य समस्याओं से जकड़ लिया है उसी प्रकार मध्यम वर्ग भी इस प्रतिस्पर्धा में पीछे नहीं है। यहीं अगर निम्न वर्ग की बात की जाय तो उसकी आमदनी इतनी नहीं है कि वे अपने बच्चों को अच्छे विद्यालय में पढा सकें, उनको उचित पोषण की व्यवस्था कर सकें तथा अच्छे अस्पतालों में उनका इलाज करा सकें। दिनभर मजदूरी कर जैसे-तैसे परिवार की पेट भरने की व्यवस्था करते हैं। इनका जीवन भी धन और व्यवस्थाओं के आभाव में कई सारी गंभीर बीमारियों से ग्रसित रहता है । शिक्षा और नैतिकता जैसे शब्द इनके लिए बेमानी ही हैं।

हमारे पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों के पतन के लिए टेलीविजन का भी अहम् योगदान है। आज की पीढ़ी पूरी तरह फिल्मों तथा धारावाहिकों से प्रभावित है। जिस तरह धूम्रपान, शराब आदि नशीले पदार्थों के पैकेट पर यह चेतावनी दर्शायी रहती है कि धूम्रपान स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है उसी प्रकार लगभग सभी फिल्म तथा धारावाहिकों में यह चेतावनी बताई जाती है कि इस फिल्म/धारावाहिक के सभी पात्र और घटनाएँ काल्पनिक हैं, इनका हकीकत से कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु हम इन चेतावनियों पर

बिलकुल भी ध्यान नहीं देते और मात्र मनोरंजन के लिए पर्दे पर दर्शाए गए काल्पनिक नाटक को अपने जीवन में उतारने की कोशिश करते रहते हैं। टेलीविजन का सबसे बुरा प्रभाव बच्चों और युवा पीढ़ी को हो रहा है जैसे- फिल्मों के तर्ज पर बोल-चाल, वेष-भूषा, रीति-रिवाज, मार-पीट आदि काल्पनिक गुणों को बच्चे और युवा अपने वास्तविक जीवन में अपनाने के लिए प्रयासरत रहते हैं। रहा सही कसर पिछले 10 वर्षों में मल्टीमीडिया और मोबाइल ने पूरी कर दी है। वर्तमान समय में बुजुर्ग, युवा, और छोटे बच्चों, सभी ने अपने आप को मोबाइल में उलझा रखा है जिसकी वजह से आजकल बच्चों का जीवन बचपन से ही पूरी तरह से चारदीवारी के अंदर कैद होकर रह गया है। इसी तरह खराब जीवन शैली तथा असंतुलित खान-पान के कारण आज भारत में मोटापा, अवसाद, अनिद्रा आदि गंभीर बीमारियों ने पूरी तरह से अपने पैर पसार रखे है। उम्र के जिस पड़ाव में छोटे बच्चों को खेलने-कूदने तथा अपने माता-पिता, दादा-दादी, बहन-भाई आदि परिवार के अन्य सदस्यों के सहयोग से नैतिक गुणों के विकास की आवश्यकता होती है उस उम्र में बच्चों को आज मात्र 3 वर्ष की आयु में किताबों और कापियों के बोझ तले दबा दिया जाता है। आज के दौर में दो तरह के माता-पिता है-एक वो जो पिता नौकरी या व्यवसाय करता है और माता गृहणी होती है और दसरे वो जो कि माता और पिता दोनों नौकरीपेशा या व्यवसायी हैं। आमतौर पर व्यवसायी या नौकरी पेशा पिता सुबह जल्दी उठकर दफ्तर या अपने व्यवसाय के लिए निकल जाता है और देर शाम घर वापस आता है वहीं माताओं की दिनचर्या का ज्यादा से ज्यादा समय मोबाइल पर बातचीत या टेलीविजन पर पसंदीदा धारावाहिकों को देखने में व्यतीत होता है जब कि घर के दैनिक कार्य जैसे-खाना-पीना, झाड़ू-पोंछा, कपड़े धोना, छोटे बच्चे की देख-रेख आदि नौकरों के भरोसे है। शारीरिक श्रम न होने के कारण इनका स्वास्थ्य बुरी तरह से प्रभावित हो रहा है। जिन परिवारों में दोनों ही व्यवसायी या नौकरी पेशा वाले हैं, उनको मजबूरी में घर के कार्य और बच्चों की परिवरिश के लिए एक से अधिक नौकर रखने पड़ते हैं।

बात गौर करने की यह है कि आज हम बच्चों की परिवरिश व घर की देखभाल के लिए नौकरों पर तो विश्वास कर लेते हैं परन्तु अपने बुजुर्ग माता-पिता का विश्वास नहीं करते जो बच्चों में पारिवारिक व नैतिक गुणों के विकास में सबसे ज्यादा योगदान दे सकते हैं। हर माता-पिता की ख्वाहिश होती है कि उसका बच्चा पढ़ लिख कर बड़ा आदमी बने और बुढ़ापे का सहारा बने। उसके लिए वह अपने सुखों का त्याग करता है। यहाँ तक कि उसकी शिक्षा और सुख सुविधा के लिए अपने बुजुर्ग माता-पिता व रिश्तों नातों भी से दूर हो जाता है। नैतिक गुणों के आभाव में जब यही बच्चा पढ़ लिख कर बड़ा आदमी बनता है तो वह भी वृद्ध माता-पिता को किसी अनाथ आश्रम या पैतृक घर में अकेला छोड़कर अपनी अलग दुनिया में गुम हो जाता है। आज के बच्चे अपने माता-पिता, अध्यापकगण तथा बुजुर्गों का सम्मान करने से परहेज करते हैं। सच्चाई यह भी है कि माँ बाप के लाड़ प्यार ने बच्चों को बिगाड़ रखा है। यदि स्कूल के अध्यापक ने किसी बालक की गलती पर उसको डांट-फटकार लगाता है तो अगले दिन उस बच्चे के माता-पिता अध्यापक से लड़ने पहुँच जाते हैं, बच्चे के भविष्य के लिए जो प्रयासरत रहते है उनको मुलजिम की तरह प्रधानाचार्य के समक्ष छमा याचना माँगनी पड़ती है। बात कभी-कभी यहीं खत्म नहीं होती, वही छोटी सी बात बढ़-चढ़ कर अखबारों की सुर्खियाँ भी बन जाती है। आज की पीढ़ी इतनी ही असंवेदनशील हो चुकी है। खेद का विषय है कि हमारी शिक्षा केवल बौदिक विकास पर ध्यान देती है, बोध जाग्रत नहीं करती, जिज्ञासा नहीं जगाती। सत्य को खोजने के लिए प्रेरित करे और आत्मज्ञान की ओर ले जाए, सही शिक्षा तो वो है जो शिक्षार्थी में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को विकसित करे, नैतिकता मनुष्य के जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है।

नैतिक मूल्यों के पतन के कारण उत्पन्न समस्याओं से निजात पाने के लिए सर्वप्रथम हर माता-पिता को अपने विचारों को बदलना होगा और व्यावहारिक जीवन में बच्चों के समक्ष नैतिकता के उदाहरण रखने पड़ेंगे। तकनीकी भाषा में कहा जाय तो बच्चे के जन्म के बाद उनका कंप्यूटर की दिमाग रुपी मेमोरी एकदम खाली रहती है, जिसमें सर्वप्रथम माता-पिता ही अपना सॉफ्टवेयर स्थापित करते हैं वह उसी तरह से व्यावहारिक जीवन में कार्य करता है। इसलिए अपने बच्चों को बचपन से ही अनुशासन, नियम-संयम और नैतिक मूल्यों के आधार पर जीवन के सफर को बढाएं तरीका सीखाएं।

रामकृपाल
हेल्पर

.....

बच्चों में सोशल मीडिया एवं स्मार्टफोन का बढ़ता प्रयोग

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप।।

कबीर दास द्वारा रचित यह दोहा ही आज के युग में सोशल मीडिया और स्मार्टफोन के बढ़ते प्रयोग को शायद संतुलित कर सकता है।

आज हम बात कर रहे हैं उन बच्चों की जिनका अधिकांश समय सोशल मीडिया और स्मार्ट फोन पर व्यतीत होता है। वैसे तो कहा गया है किसी भी चीज़ की अधिकता हानिकारक होती है, तो सबसे पहले हम बात करते हैं उन छोटे-छोटे बच्चों की जिनके माता-पिता दोनों ही कार्यरत होते हैं। वो अपना बच्चा किसी अन्य सहायक के भरोसे छोड़ देते हैं। उस समय वह बच्चा स्मार्टफोन से खेलता है। उसके बाद जब माता-पिता के साथ होता है तब भी वह बच्चा स्मार्टफोन का प्रयोग करता है। यहाँ हम केवल उन अभिभावकों की ही बात नहीं कर रहे हैं बल्कि उन बच्चों की भी कर रहे है जिनकी माता घर में रहती है। माता-पिता बच्चों को उतना समय नहीं देते जिनके वे हकदार हैं। अभिभावकों को लगता है कि उनका बच्चा बहुत होशियार है किन्तु उनको नहीं पता कि बच्चा जाने अनजाने में न जाने कितनी सारी बातों को जान चुका है जिसकी उसे आवश्यकता ही नहीं है। यही कारण है कि बच्चों में मानसिक अवसाद बढ़ रहा है, मोटापा बढ़ रहा है क्यों कि वो शारीरिक खेल से ज्यादा मोबाइल गेम में खुश हैं। विश्व स्तर पर किये गये सर्वे से पता चला है कि जो बच्चें सोशल मीडिया को कम समय देते हैं वे जीवन के दूसरे पहलुओं के प्रति ज्यादा संतुष्ट हैं एवं अन्य क्रियाकलापों में जुड़ पाते हैं।

बच्चों ! आप सब अपना समय पुस्तकों एवं खेल के मैदान को दें न कि मोबाइल को।

अभिलाषा विश्वकर्मा
अध्यापिका (कैंपस स्कूल)

सीख

आओ बच्चों हम तुमको
नैतिकता का पाठ पढ़ाते हैं,
ईमानदारी और सच्चाई से
जीने का हुनर सिखाते हैं ॥
माता, पिता, गुरु और बड़ों का,
आदर करना सिखाते हैं ॥
कभी न करो अपमान किसी का
करना है सबका सम्मान बताते हैं॥
नहीं करो कभी जाति धर्म का भेद,
यही तुमको सिखाते हैं,
हम सारे भारतीय एक हैं
तुमको हम यही बताते हैं॥
हर नारी का करो सम्मान,
सबको यही सिखाते हैं,
भ्रष्टाचार और दुराचार से
लड़ना है तुम्हें बताते हैं॥
सब से बढ़कर है देश हमारा,
आओ इसका मान बढ़ाते हैं
भारत माँ की रक्षा में
प्राण न्योछावर करना दिखलाते हैं॥

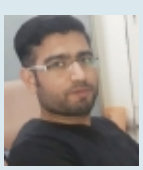

भरत सोमैया
वरिष्ठ तकनीशियन, संगणक केन्द्र

मुक्त शब्द में कन् प्रत्यय के योग से मुक्तक शब्द बनता है जिसका अर्थ अपने आप में संपूर्ण या अन्य निर्पेक्ष वस्तु होता है। मुक्तकमन्येनालिंगितं तस्यसंज्ञायां कन् (ध्वन्यालोक लोचन)। ध्वनि सिद्धांत में मुक्तक को सम्मानजनक स्थान दिया गया। ध्वन्यालोक के अनुसार जिस काव्य में पूर्वापरप्रसंग निरपेक्ष रस चर्वणा का सामर्थ्य होता है, वही मुक्तक कहलाता है। अग्निपुराण के अनुसार, "मुक्तक, श्लोकएवैकश्चमत्कारक्षमः सताम्" अर्थात् मुक्तक में एक ही श्लोक चमत्कार उत्पन्न करने में पूर्णत सक्षम होता है। 'साहित्यदर्पण' के अनुसार, "छंदोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम्।" अर्थात् जो अन्य पद्यों के संबंध से मुक्त हो वह मुक्तक कहलाता है। अभिनवगुप्त के अनुसार "पूर्वापर निरपेक्षेणापि हि येन रस चर्वणक्रियते तदेव मुक्तक" अर्थात् पूर्वापर निरपेक्ष होते हुए भी जिसके द्वारा रस चर्वणा करायी जाती हो, वही मुक्तक कहलायेगा।

मुक्तक काव्य, खंड अनुभूतियों का काव्य होता है। इसमें किसी एक भावदशा, रस-अवस्था, किसी एक तथ्य, वस्तु या परिस्थिति का एक ही छंद में चित्रण होता है। कोई पूर्वापर प्रसंग नहीं होता, प्रत्येक छंद या कविता अपने में पूर्ण होती है।

संस्कृत के आचार्यों ने इस अनिबद्ध या मुक्तक काव्य के कई भेद किये हैं। दंडी ने तो मुख्य भेदों का ही नाम लिया है-मुक्तक, कुलककोश और संघात, पर अन्य आचार्यों ने उसके अन्य भेद भी माने हैं। ध्वन्यालोक में आनंदवर्धन ने मुक्तक, संदानितक, विशेषक, कलापक, कुलक और पर्यायबंध-छह नाम लिये हैं। अग्निपुराण ने इनमें प्रथम पाँच भेद ही माने हैं और संदानितक की जगह युग्मक नाम दिया है। हेमचंद्र ने मुक्तादि अर्थात् मुक्तक काव्य के ये भेद माने हैं-मुक्तक, संदानितक, विशेषक, कलापक, कुलक, कोश, प्रघट्टकक, विकीर्णक और संघात। विश्वनाथ कविराज के अनुसार मुक्तक, युग्मक, संदानितक, कलापक, कुलक, कोश और व्रज्या अनिबद्ध काव्य है। ये भेद श्लोकसंख्या, रचनाकार अथवा विषय के अनुसार किये गये हैं।

संस्कृत में मुक्तक काव्य के जितने रूप प्रचलित थे, हिंदी में उनमें से कुछ को अपनाया गया और कुछ को छोड़ दिया गया। उदाहरणार्थ, युग्मक और कलापक नामक मुक्तक काव्य रूप हिंदी में नहीं मिलते और कुलक का नाम छोड़कर पंचक, अष्टक, दशक आदि संख्यावाचक या दोहावली, पदावली आदि छंद वाचक नाम प्रचलित हो गये हैं, जो कोश के रूप में माने जा सकते हैं। फारसी और अंग्रेजी के सम्पर्क तथा अपभ्रंश की काव्य परंपरा को ग्रहण करने के कारण भी हिंदी में बहुत से ऐसे नये मुक्तक काव्य रूप में आ गये जो संस्कृत में नहीं थे। प्राचीन हिंदी साहित्य लोकाश्रित रहा है। इससे लोक भाषाओं में प्रचलित अनेक मुक्तक काव्य रूपों को भी हिंदी में अपना लिया गया है। हिंदी के रीति कालीन कवियों ने मुक्तक की रचना से हिंदी को बहुत समृद्ध किया। सफल मुक्तककार के रूप में रीतिसिद्ध कवि बिहारी की प्रतिष्ठा सर्वाधिक है।

साभार
हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली
डॉ. अमरनाथ

राजभाषा प्रकोष्ठ

.....

पाती

आदरणीय संपादक

सादर अभिवादन अंतस जनवरी 2019 अंक प्राप्त कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। आपने पत्रिका में मुझे भी शामिल किया आभार। आपके कुशल संपादन एवं सूझ-बूझ भरे चयन से पत्रिका उत्तरोत्तर प्रगति के सोपान की बुलन्दियों को छूती जा रही है। वर्तमान अंक में निदेशक की कलम से लेकर अटल दर्पण अभिकल्प सुनीता सिंह तक सभी सामाग्री उच्चस्तरीय एवं एक से बढ़कर एक बन पड़ी है। साहित्य यात्रा में प्रोफेसर अरुण कुमार शर्मा, सांस्कृतिक विविधता के संदर्भ में भारतीयता के मायने डॉ अर्क वर्मा, कहानियाँ कुछ सच जैसी डॉ अंजना पोद्दार, 1857 का स्वातंत्र्य समर-रचना से लेकर प्रकाशन तक की विचित्र दास्तान-डॉ ऊषा निगम के आलेख एवं फिर भी खुश हूँ-रवि पाण्डेय, चन्द अलफ़ाज-फ़ैज़ल अंसारी, अचल सत्य-डॉ अभिषेक गुप्ता व विनायक सोनी जहर की रचनाएं चार चाँद लगा रही हैं। हमेशा की तरह इस बार भी सुन्दर प्रस्तुति के लिए आप एवं अंतस परिवार को बहुत-बहुत बधाई एवं शुभकामनायें। ईश्वर से पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति की कामना के साथ-

आपका
डॉ.अंसार कम्बरी

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में वह उत्पन्न होता है और वहीं उसका अस्तित्व बनता है, समाज में रहने के कारण मनुष्य को एक दूसरे के साथ हमेशा विचारों का आदान-प्रदान करना पड़ता है। कभी-कभी उसे अपने विचारों को प्रकट करने के लिए शब्दों एवं वाक्यों की आवश्यकता पड़ती है। भारत में एक कहावत काफी मशहूर है कि कोस-कोस पर बदले पानी चार कोस पर बानी अर्थात् एक कोस के बाद पानी का स्वाद बदल जाता है और चार कोस दूरी में बोली में परिवर्तन हो जाता है। इसका आशय यह भी है कि भारत में अनेक भाषाएं एवं बोलियाँ हैं। भाषा विज्ञान की दृष्टि से देखें तो सभी भाषाएं संस्कृत से उपजी हैं। इसका प्रमाण इन भाषाओं में समावेशित शब्द हैं। राष्ट्रहित में भाषाई एकता को बनाए रखना जरूरी है। इस पावन कार्य को ध्यान में रखते हुए हम इस पत्रिका (अंतस) के माध्यम से भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाओं को उसी क्रम में आपके समक्ष प्रस्तुत करते रहेंगे। पिछले अंकों में हमने जहाँ असमिया, उड़िया, उर्दू पर प्रकाश डाला था तो इस अंक में हम कन्नड़ भाषा की व्याख्या कर रहे हैं। कन्नड़ में भी संस्कृत के शब्दों का बहुत समावेश है।

भाषा परिवार- कन्नड़ भारत के कर्नाटक राज्य में बोली जाने वाली भाषा तथा कर्नाटक की राजभाषा है। यह भारत की उन 22 भाषाओं में से एक है जो भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित हैं। यह भारत की सबसे अधिक प्रयोग की जाने वाली भाषाओं में से एक है। 4.50 करोड़ लोग कन्नड़ भाषा का प्रयोग करते हैं। एन्कार्टा के अनुसार, विश्व की सर्वाधिक बोली जाने वाली 30 भाषाओं की सूची में कन्नड़ 27वें स्थान पर आती है। यह भाषा द्रविड़ परिवार में आती है पर इसमें संस्कृत के भी बहुत से शब्द हैं। कन्नड़ भाषी लोग इसको सिरिगन्नड कहते हैं। कन्नड़ भाषा का अस्तित्व कोई 2500 वर्ष पूर्व से है तथा कन्नड़ लिपि का प्रयोग कोई 1900 वर्ष से हो रहा है। कन्नड़ अन्य द्रविड़ भाषाओं की तरह है और तेलगू, तमिल और मलयालम इस भाषा से मिलती-जुलती हैं।

कन्नड़ संस्कृत भाषा से बहुत प्रभावित है और संस्कृत के बहुत सारे शब्द कन्नड़ में भी उसी अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। भारत सरकार ने कन्नड को भी भारत की एक शास्त्रीय भाषा (क्लासिकल लैंग्वेज) घोषित किया है।

इतिहास-कन्नड़ तथा कर्नाटक शब्दों की व्युत्पत्ति के संबंध में भिन्न-भिन्न मत हैं। यदि किसी विद्वानों का मत है कि कंरिदुअनाडु अर्थात् काली मिट्टी के देश से कन्नाडु और कन्नाडु से कन्नड़ की व्युत्पत्ति हुई है। कन्नड़ साहित्य के इतिहासकार आर. नरसिंहाचार ने इस मत को स्वीकार किया है। कुछ वैयाकरणों का कथन है कि कन्नड़ संस्कृत शब्द कर्नाट का तद्भव रूप है। यह भी कहा जाता है कि 'कर्णयो अटति इति कर्नाटक' अर्थात् जो कानों में गूँजता है वह कर्नाटक है।

प्राचीन ग्रंथों में कन्नड़, कर्नाट, कर्नाटक शब्द समानार्थ में प्रयुक्त हुए हैं। महाभारत में कर्नाट शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है (कर्नाटकश्च पद्मजाला सतीनरा, सभापर्व, 78, 94, कर्नाटका महिषिका विकल्पा मूषकास्तथा, भीष्मपर्व 58-59)। दूसरी शताब्दी में लिखे हुए तमिल शिलप्पदिकारम् नामक काव्य में कन्नड़ भाषा बोलने वालों का नाम करुनाडर बताया गया है। वराहमिहिर के बृहत्संहिता, सोमदेव के कथासरित्सागर, गुणाढ्य की पैशाची बृहत्कथा आदि ग्रंथों में भी कर्नाट शब्द का बराबर उल्लेख मिलता है।

कर्नाटक शब्द अंग्रेजी में विकृत होकर कर्नाटिका अथवा केनरा , फिर केनरा से केनारीज़ बन गया है। उत्तरी भारत की हिंदी तथा अन्य भाषाओं में कन्नड़ शब्द के लिए कनाडी, कन्नडी, केनारा, कनारी का प्रयोग मिलता है।

आजकल कर्नाटक तथा कन्नड़ शब्दों का निश्चित अर्थ में प्रयोग होता है- कर्नाटक प्रदेश का नाम है और कन्नड़ भाषा का।

कन्नड़ भाषा लिपि-

प्राचीन कन्नड़ शिलालेख 578 ई. बादामी-चालुक्य वंश कालीन, जो बादामी के गुफा में मिले हैं।

द्रविड भाषा परिवार की भाषाएं पंचद्राविड़ भाषाएं कहलाती हैं। किसी समय इन पंचद्राविड भाषाओं में कन्नड़, तमिल , तेलुगु, गुजराती तथा मराठी भाषाएं सम्मिलित थीं। किन्तु आजकल पंचद्राविड़ भाषाओं के अंतर्गत कन्नड़, तमिल, तेलुगु, मलयालम तथा तुलु मानी जाती हैं। वस्तुत तुलु कन्नड़ की ही एक पुष्ट बोली है जो दक्षिण कन्नड जिले में बोली जाती है। तुलु के अतिरिक्त कन्नड़ की अन्य बोलियाँ हैं-कोडगु, तोड, कोट तथा बडग। कोडगु कुर्ग में बोली जाती है और बाकी तीनों का नीलगिरि जिले में प्रचलन है। नीलगिरि जिला तमिलनाडु राज्य के अंतर्गत है।

चारों द्रविड़ भाषाओं की अपनी पृथक-पृथक लिपियाँ हैं। डॉ. एम.एच कृष्ण के अनुसार इन चारों लिपियों का विकास प्राचीन अंशकालीन

ब्राह्मी लिपि की द्रक्षिणी शाखा से हुआ है। बनावट की दृष्टि से कन्नड़ और तेलुगु में तथा तमिल और मलयालम में साम्य है। 13वीं शताब्दी के पूर्व लिखे गए तेलुगु शिलालेखों के आधार पर यह बताया जाता है कि प्राचीन काल में तेलुगु और कन्नड़ की लिपियाँ एक ही थीं। वर्तमान कन्नड़ की लिपि बनावट की दृष्टि से देवनागरी लिपि से भिन्न दिखाई देती हैं, किन्तु दोनों के ध्वनि समूह में अधिक अंतर नहीं है। अंतर इतना ही है कि कन्नड़ में स्वरों के अंतर्गत ए और ओ के ह्रस्व रूप तथा व्यंजनों के अंतर्गत वत्स्य ल के साथ-साथ मूर्धन्य ल वर्ण भी पाए जाते हैं। प्राचीन कन्नड़ में र और ल प्रत्येक के एक-एक मूर्धन्य रूप का प्रचलन था, किन्तु आधुनिक कन्नड़ में इन दोनों वर्णों का प्रयोग लुप्त हो गया है। बाकी ध्वनि समूह संस्कृत के समान है। कन्नड़ की वर्णमाला में कुल 47 वर्ण हैं। आज कल इनकी संख्या बावन 52 तक बढ़ा दी गई है।

वर्तमान में सभी कार्य करना आसान हो गया है चाहे वो घर के कार्य हों या कार्यालय के । इसी प्रकार कुछ भी जानना, पढ़ना भी आसान हो गया है। आज हम बिना किसी से मदद माँगे स्वयं इंटरनेट के माध्यम से एक से अधिक भाषाएं सीख सकते हैं। आगामी अंक में आपसे फिर मिलेंगे एक और भाषा के साथ।

राजभाषा प्रकोष्ठ

.....

सुख के संगी स्वारथी, दुख में रहते दूर।
कहैं कबीर परमारथी, दुख सुख सदा हजूर।।
स्वार्थी लोग केवल सुख के साथी होते हैं, दुख आने पर वे भाग खड़े होते हैं। कबीर कहते हैं कि जो सच्चे परमार्थी होते हैं वे दुख में हों या सुख में सदा आपके साथ होते हैं।

झूठा सब संसार है, कोउ न अपना मीत।
राम नाम को जानि ले, चलै सो भौजल जीत।।
हे मनुष्य यह संसार झूठा और असार है। यहाँ कोई अपना मित्र-संबंधी नहीं है। इसलिए तू राम नाम की सच्चाई को जान तो इस भव सागर से मुक्ति मिल जाएगी।

कबीर दोहावली

कविता

नन्ही कली

सुना है आ गया है बसंत,
खुले नभ के नीचे होंगी कलियाँ अनंत।
पर मैं चाहती हूँ आज एक ऐसा बसंत
जिसमें फिर खिल सके
मेरे घर की कली निश्चिंत
इन पेड़ों की कलियों का शाश्वत है नियम,
खिलना है, मुरझाना है।
पर मेरी इन कलियों को निरंतर बढ़ते जाना है।
क्यूँ नाम दिया है मात्र कोमलता का,
बढ़कर ये निकलती कंटकता से
क्यूँ जीवन हो नहीं सकता चिर स्वच्छन्द?
क्यों इतना शीघ्र समाप्त हो जाता ये बसंत?
क्यूँ भय है ज्वालाओं से जल जाने का,
क्यूँ मस्त पवन सी बह सकती नहीं?
क्यूँ भय है असमय कुम्हलाने का,
क्यूँ अपना यौवन जी सकती नहीं?
क्यूँ हजार निगाहें देखती हैं उस उजड़ी कली को
क्यूँ दस हाथ भी उठते नहीं उस विनाशी को?
क्यूँ न हों आज हम सब प्रतिबद्ध,
कि न होंगी मात्र पुत्रियाँ ही आबद्ध।
इन्हें भी खुली हवा में साँस लेने दो,
इन्हें भी अपना जीवन जीने दो।

दिव्या बाजपेयी
परिसरवासी

"अगर आप अपनी ज़िन्दगी दोबारा जी सकें तो आप क्या बदलना चाहेंगे?"

इस काल्पनिक (hypothetical) प्रश्न का सामना आप सभी ने किया होगा; या तो मित्रों के साथ हंसी मज़ाक में या फिर एकांत में अपने ही साहचर्य में। वैसे तो सभी यही कहते हैं - "मैं अपने जीवन से बिलकुल खुश हूँ, कुछ भी बदलना नहीं चाहूंगा।" पर यदि आप मनन करें तो कुछ न कुछ बदलने योग्य अवश्य पाएंगे। उदाहरणार्थ - मैं अपने गुस्से पर काबू पाना चाहूंगा। वैसे तो बढ़ती उम्र के साथ गुस्सा बहुत कम हो गया है पर यही बात यदि बीस साल पहले हुई होती तो शायद आज, बीस साल बाद, जीवन किसी और दिशा में चला होता।

आम तौर पर मनुष्य अपनी कमियों को बदलना चाहता है। जो कुछ सीखना या करना बाकी रह गया हो उसे पूरा करना चाहता है - जैसे महाबलेश्वर के स्थान पर महाबलीपुरम की सैर या फिर सितार के बदले सरोद सीखना। पर साधारणतः लोग दूसरों से अपनी तुलना करते हैं और उनकी तरह बनना चाहते हैं। या फिर उनकी हासिल की हुई चीज़ों या अवस्था को हासिल करना चाहते है। जहाँ तक दूसरों के सद्गुणों की प्राप्ति की आकांक्षा हो तो वो परम चाह है और हमें अपने आप को वहीं तक सीमित रखना चाहिए न कि पदार्थवाद की ओर झुकना चाहिए। हमारी मूल्य शिक्षा यहीं काम आती है।

बचपन से ही हमारे माता पिता व सभी गुरुजन हमें ये समझाते हैं - क्या सही है क्या गलत है, क्या उचित है क्या अनुचित है। सही और अच्छे मूल्यों की नीव परिवार में ही पड़ जाती है। आगे चलकर जब शिशु शिक्षा प्राप्त करने विद्यालय में दाखिल होता है तब शिक्षक भी पाठ्यक्रम के साथ साथ उसे सही मूल्यबोध का ज्ञान अवश्य कराते हैं। एक दूसरे को देखकर भी बच्चे सही गलत दोनों बातें सीखते हैं। शिक्षकों का प्रयास रहता है कि बच्चों को सही और गलत की पहचान कराएं। प्रायः सभी विद्यालयों में औपचारिक रूप से नीति विज्ञान या नीति-शास्त्र की कक्षाओं का आयोजन किया जाता है ताकि बच्चों को मूल्य शिक्षण दिया जा सके।

अब सवाल यह है कि शिक्षण के रूप में दिए गए मूल्य बोध का ज्ञान कहाँ तक प्रभावकारी हो पाता है? ज़रुरत है ऐसी बातों को पुस्तक तक सीमित न रखते हुए उन पर निजी ज़िन्दगी में अमल करने की। और ये तभी संभव है जब हम अपने अहम् को त्याग कर सही बातों को अहमियत दें। गलत से सचमुच दूर रहें न कि बस कहने भर को। और भी ज़रूरी है कि मूल्यबोध को किताबों से निकालकर बड़े बुजुर्ग उसे अपने जीवन की शैली बना लें।

तदुपरांत ही बच्चे आसानी से सीख पाएंगे और सही-गलत को समझकर सही मार्ग का चयन कर पाएंगे। ऐसा इसलिए क्योंकि न केवल बच्चे बल्कि सभी लोग देख सुनकर आसानी से सीखते हैं और उसे अपने जीवन में उतारते है न कि मात्र पाठ पढ़कर।

अंजना पोद्दार
परिसरवासी

.....

अनमोल वचन

कभी भी मन में अपवित्र विचार उत्पन्न न होने दो। ज्ञान के अंकुश से अशुभ विचारों को दबा दो।

पुरुषार्थ और प्रयत्न से तुम बड़ी से बड़ी खराब अवस्था को भी बदल सकते हो।

दूसरो का कभी बुरा न चाहो। यदि कोई तुमसे किसी बात में आगे हो गया हो तो उसे गिराने का प्रयत्न न करो बल्कि कोशिश करके उससे अधिक गुण स्वयं में धारण करो।

साई लीला शाह जी

बहुत समय पहले की बात है, एक पेड़ पर एक अन्धा गिद्ध रहता था। उसने नदी के किनारे खड़े एक विशाल वृक्ष की कोटर में अपना घर बनाया हुआ था। उस विशाल पेड़ पर अन्य पक्षियों ने भी अपने घोंसले बना रखे थे। उन सभी पक्षियों को अन्धे गिद्ध को देखकर उस पर दया आती थी। इसलिए वे सभी अपने भोजन का कुछ भाग उस गिद्ध को दे देते थे। बदले में वह गिद्ध पेड़ पर रहने वाले पक्षियों की अनुपस्थिति में उनके बच्चों का ध्यान रखता था।

एक दिन उस पेड़ के पास से एक बिल्ली गुजर रही थी। उसे पक्षियों के चहचहाने की आवाज़ सुनाई दी। आवाजें सुनकर वह सोचने लगी, ऐसा लगता है कि इस पेड़ पर बहुत सारे पक्षी अपने बच्चों के साथ रहते हैं। यदि ये सब मुझे मिल जाएँ तो यह मेरी खुशकिस्मती होगी।

ऐसा सोचकर बिल्ली तुरन्त पेड़ पर चढ़ गई। पक्षियों के नन्हें बच्चे बिल्ली को पेड़ पर चढ़ते देखकर जोर-जोर से चिल्लाने लगे। उनके चिल्लाने की आवाज़ सुनकर अन्धा गिद्ध भी सतर्क हो गया। वह अपने कोटर से बाहर आया और बोला क्या बात है कौन है? वहाँ गिद्ध को इधर-उधर देखते बिल्ली तुरन्त समझ गई कि यह गिद्ध अन्धा है। गिद्ध को मूर्ख बनाते हुए वह बोली, हे पवित्र आत्मा, मैं तो एक साधारण सी बिल्ली हूँ और यहाँ केवल आपके दर्शन करने आई हूँ।

बिल्ली तो मेरे लिए एक बड़ा खतरा और परेशानी है। तुम यहाँ से तुरन्त चली जाओ। अन्धा गिद्ध चिढ़ते हुए बोला।
अरे नहीं, हे पवित्र आत्मा! मैं यहाँ आपको या आपके पक्षियों के बच्चों को परेशान करने नहीं आई हूँ। मैंने सुना है कि आप इस पेड़ पर रहने वाले पक्षियों के बच्चों को बहुत प्यार व स्नेह करते हैं। उनकी बहुत अच्छी तरह से देखभाल करते हैं। मैं तो आपको अपना गुरु बनाना चाहती हूँ। कृपया मुझे शिष्य बनाकर अपना आशीर्वाद दीजिए।

बिल्ली ने झूठी चापलूसी व चिकनी-चुपड़ी बातों से गिद्ध का दिल जीत लिया, परन्तु गिद्ध अब भी बिल्ली से सतर्क था। वह बोला, ठीक है, मैं तुम्हें अपना शिष्य बना लेता हूँ, परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि यहाँ तुम्हारी उपस्थिति में पक्षियों के बच्चे असुरक्षित रहेंगे।

नहीं, नहीं, हे पवित्र आत्मा! आपको चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं क्योंकि मैंने पिछले एक वर्ष से माँस व अण्डे खाना छोड़ दिया है।

बिल्ली की इन बातों को सुनकर गिद्ध का भय जैसे गायब ही हो गया। उस दिन से धार्मिक विषयों पर विचार-विमर्श करने के लिए बिल्ली प्रतिदिन गिद्ध के पास पेड़ पर आने लगी। परन्तु अभी वह किसी भी पक्षी के बच्चे को नुकसान नहीं पहुँचाती थी क्योंकि उसका मकसद गिद्ध पर अपना विश्वास जमाना था।

शीघ्र ही बिल्ली अपने उद्देश्य में सफल हो गई क्योंकि थोड़े ही समय में गिद्ध को बिल्ली पर अब पूरा विश्वास हो गया था। पक्षियों के बच्चों को भी अब बिल्ली से डर नहीं लगता था।

धीरे-धीरे बिल्ली ने अपना वास्तविक रूप दिखाना आरम्भ कर दिया। जब सभी पक्षी भोजन की तलाश में चले जाते थे और गिद्ध दोपहर की नींद में होता था, तो मौका पाकर बिल्ली चुपके से पेड़ पर चढ़, किसी घोंसले में से एक पक्षी के बच्चे को उठाती और चुपचाप खा जाती। साथ ही गिद्ध के अन्धेपन का लाभ उठाकर वह बची हुई हड्डियों को उसके कोटर में डाल देती। इसी प्रकार कई दिन बीत गए। शीघ्र ही पक्षियों ने महसूस किया कि उनके बच्चे धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। जब बिल्ली ने देखा कि सभी पक्षी अपने बच्चों के लिए चिंतित हैं तो वह वहाँ से तुरन्त भाग गई। सभी पक्षी मिलकर अपने बच्चों को ढूँढ़ने लगे। बच्चों को कहीं न ढूँढ़ पाने पर चिंतित पक्षी मिलकर अंधे गिद्ध के पास पूछपाछ करने के लिए पहुँचे। जब पक्षी गिद्ध के कोटर के समीप आए तो उन्होंने उसके कोटर के बाहर हड्डियाँ पड़ी देखीं। हड्डियों को देखकर उन्हें विश्वास हो गया कि जरूर अन्धे गिद्ध ने उनके बच्चों को खा लिया है और खाने के बाद हड्डियाँ यहाँ फेंक दी हैं। सभी पक्षियों ने मिलकर अपने पंजों व चोंचों से अन्धे गिद्ध पर

हमला कर दिया। क्रोधित पक्षियों के प्रहार से अंधे गिद्ध को उसके कष्टमय जीवन से मुक्ति मिल गई। इस प्रकार अन्धे गिद्ध का उस दुष्ट आत्मा पर सहज विश्वास ही उसकी मृत्यु का कारण बन गया।

साभार संग्रह स्रोत
हितोपदेश की कहानियां

.....

बच्चों !

→ अपने विद्यालय एवं घर के आस-पास को स्वच्छ रखें। इस प्रकार हमारा देश और सुंदर हो जायेगा।

→ वर्षा ऋतु में अपने आस-पास पेड़ लगाएं।

→ जल का संरक्षण करें।

→ यातायात के नियमों का पालन करें।

इन बातों का ध्यान रखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है।

बीज

एक बीज जब उड़कर आता
मिट्टी में बस जाता
जब श्रावण का महीना आता
बरसात में एक पौधा बन जाता
जब गर्मी का मौसम आता
तो थोड़ा बड़ा होकर फूल पत्तियाँ फल उगाता,
जब बड़ा हो जाता
तो उसमें झूला लगाया जाता है
आसमान से धूप देता सूरज
पत्तियाँ हरी हो जाती
पेड़ ही हमें जीवित रखते
और पशुपक्षियों को जीवित रखते।

दिव्या, छात्रा
अपरच्युनिटी स्कूल

कार्यालयीन	टिप्पणियाँ
कृपया शीघ्र उत्तर दें	Kindly expedite reply
जवाब तलब किया जाए	Call for an explanation
समेकित रिपोर्ट प्रस्तुत की जाए	Consolidated report may be furinshed
विसंगति का समाधान कर लिया जाए	Discrepancy may be reconciled
मौखिक अनुदेश के अनुसार	As Verbally instructed
प्रतिलिपि सूचना और आवश्यक कारवाई के लिए प्रेषित	Copy forwarded for information and necessary action
मामले का संक्षिप्त सारांश नीचे रखा है	A brief summary of the case is placed below
आज ही जारी करें	Issue today

श्रद्धांजलि

स्वर्गीय-नामवर सिंह

जन्म 28 जुलाई, 1926 मृत्यु 19 फरवरी, 2019

नामवर सिंह का जन्म 28 जुलाई 1926, को बनारस (वर्तमान में चंदौली जिला) के एक गाँव जीयनपुर में हुआ था। उन्होंने हिन्दी साहित्य में एम०ए० व पी-एच०डी० करने के पश्चात् काशी हिंदू विश्वविद्यालय में अध्यापन किया लेकिन 1959 में चकिया चन्दौली के लोकसभा चुनाव में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ने तथा असफल होने के बाद उन्हें बी.एच.यू छोड़ना पड़ा। बी.एच.यू के बाद डॉ० नामवर सिंह ने क्रमश: सागर विश्वविद्यालय और जोधपुर विश्वविद्यालय में भी अध्यापन किया। बाद में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में उन्होंने काफी समय तक अध्यापन कार्य किया। अवकाश प्राप्त करने के बाद भी वे उसी विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा केन्द्र में इमेरिट्स प्रोफेसर रहे। वह हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, बाङ्ला एवं संस्कृत भाषा भी जानते थे। 19 फरवरी 2019 की रात्रि में नयी दिल्ली स्थित एम्स में उनका निधन हो गया। उन्होंने हिन्दी आलोचना को नयी पहचान दिलाई। वह वास्तव में नामवर आलोचक थे।

संपर्क
राजभाषा प्रकोष्ठ
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर (उ.प्र.)
दूरभाष-0512-259-7122
ईमेल-kbalani@iitk.ac.in, vedps@iitk.ac.in, sunitas@iitk.ac.in
वेब-http://www.iitk.ac.in/infocell/iitk/newhtml/Antas

अभिकल्प-सुनीता सिंह